पूज्यश्री अमोलक ऋषिजी महाराज स्मारक ग्रन्थमाला पुष्प स ६१

जो सुधर्मा स्वामी ने सन्ना

सयोजक —

पडित मुनि श्री कल्याण ऋषिजी महाराज

वीर सवत् २४८४ अमोलाब्द २२	आधा मूल्य १) रुपया	विक्रम सवत् २०१५ अगस्त सन् १९५८ ई

प्रकाशक की ओर से

आदरणीय वाचकवृन्द !

रत्नाकर में रत्नों का ढेर होता है, किन्तु मिलता है, उन्हीं को जो उसे प्राप्त करना चाहते हैं और सिर्फ चाहते ही नहीं, उन्हें ढूँढने का प्रयत्न भी करते हैं। जैनागम भी एक ऐसा ही रत्नाकर है, जिस से आध्यात्मिक तत्त्वों के एक से एक बढ कर उज्ज्वल रत्न भरे पडे हैं।

प० मुनि श्री कल्याणऋषिजी म० सा० ने काफी परिश्रम करके ऐसे ही कुछ रत्नों को जैनागम-रत्नाकर में से खोज कर उनका व्यवस्थित सकलन किया है। उसी सकलन का एक अश यह 'देव' नामक पुस्तक है।

उनके बहुमूल्य सकलन को प्रकाशित करते हुए हम एक प्रकार के गौरव का अनुभव कर रहे हैं। इस सकलन से यदि समाज ने लाभ उठाया तो हम शीघ्र ही प०, मुनि श्री के द्वारा सकलित गुरु धर्म, कर्मवाद, रत्नत्रय आदि अन्य पुस्तकें भी क्रमश प्रकाशित करने का प्रयत्न करेंगे।

इस पुस्तक में आर्थिक सहायता देने वाले निम्नलिखित सज्जन हैं —

२०१—०० श्रीमान् छीतरमलजी डूँगरवाल बीजलपुर

इनका विस्तृत परिचय अलग पृष्ठ पर दिया गया है।

१५१-०० श्री व० स्था० जैन श्रावक संघ घरणगाँव
१०१-०० श्रीमान् गुलदानीली " (पू० ला०)

१०१-०० " गोकुलचन्दजी रूपचन्दजी कोठारी
कोपरगाँव (अ० नगर)

आपकी धर्मश्रद्धा और उदारता प्रसिद्ध है।

१०१-०० श्री कन्हैयालालजी लूंकड़ की ध. प. सुन्दरबाई
(शोलापुर)

आप ने अपने सुपुत्र ज्ञानचंद के जन्मोपलक्ष में यह दान किया है। आपका सारा परिवार धार्मिक वातावरण में रँगा है।

१०१-०० श्री वंसीलालजी कर्णावट देवला (नासिक)

श्रीमान् रायचन्दजी के आप सुपुत्र हैं । पहले आप खरड़े में रहते थे, किन्तु पिछले दस वर्षों से यहाँ आकर वस गये है। आपने अपनी माताजी श्री सुन्दरबाई के कहने से यह दान किया है। आपका सारा कुटुम्ब तपस्वी है ।

१०१-०० श्री गुलाबचंदजी लूंकड़ देवला (नासिक)

आपने अपने स्व० पिताजी श्रीमान् छोगमलजी के स्मृति मे यह दान किया है। आपके पिताजी बड़े तपस्या-प्रेमी थे। सन् १९३१ की बात है। उस समय विहार करते हुए तपस्वी मुनि श्री गणेशीलालजी म० सा० वाजगाँव में जब पधारे थे, तब उन्होने बड़े उत्साह से सेवा की थी और अपनी ओर से प्रेरणा देकर अनेक लम्बी-लम्बी १२ उपवास तक की तपस्याएँ करवाई थीं। आपकी माताजी स्व० श्रीमती गंगाबाई भी तपस्विनी थीं।

१०१-०० श्रीमान् धर्मचन्दजी मोदी उमराणा (नासिक)

आपने अपने स्व० पिताजी श्री रीधकरणजी की स्मृति में अपनी माताजी श्रीमती गंगूबाई के कहने से यह दान किया है। साधुमन्तों के पधारने पर आप सेवा का खूब लाभ लेते हैं। आप उमराणे के एक प्रमुख श्रावक हैं। आपकी धर्मभावना भी काफी प्रबल है।

५१-०० श्रीमान् लालचन्दजी हाराचन्दजी सँकलेचा देवला
५१-०० ,, जोगराजजी कुन्दनमलजी वेदमुथा
लाखना (सबलपुर)
५१-०० ,, प्रेमराजजी पन्नालालजी मेहर हिंगोना (पू खा)
(अठाई तप के उपलक्ष में)
५१-०० ,, पीरचदजी लालचदजी सोंढ एलदा ,,
४१ ०० ,, मोतीलालजी सुखलालजी छाजेड़ एलदा ,,
३१-०० ,, सुगनमलजी तेजमलजी सुराणा देवला (नासिक)
३१-०० ,, रतनचंदजी केशरीमलजी मागरेचा दहिवद
(पू खा)
२५-०० ,, हंसराजजी पोपटलालजी सकलेचा देवला
२५-०० ,, दयालदासजी हसराजजी कर्णावट ,,
२५-०० ,, दयालदासजी की ध० प० कचराबाई ,,
२१-०० ,, उत्तमचंदजी हुकमीचंदजी सकलेचा ,,
२१-०० ,, कन्हैयालालजी कोठेड़ की ध० प० सरजूबाई
धांवल खेड़ा (पू खा)
१५-०० ,, अमरचन्दजी उत्तमलजी कोंकरिया हिसाला
११-२५ ,, प्रेमराजजी प्रतापमलजी रतनपुरी घोरा ,,
११-०० ,, पारसमलजी रायतमलजी चोरडिया कमखेड़ा
(प खा.)

११-०० श्रीमती पतासीबाई भ० उत्तमचंदजी बागरेचा दहिवद (पू. खा.)

११-०० ,, मदनबाई भ० सुगनचंदजी चाँदवड़

११-०० ,, उमरावबाई टिटवा

५-०० श्रीमान् हस्तीमलजी शिवदानमलजी लूणावत एलदा

मैं अपनी संस्था की ओर से उपर्युक्त सभी दानवीर सज्जनों का हार्दिक-आभार स्वीकार करता हूँ।

[सूचनाः—स्मरण रहे कि उपलब्ध आर्थिक सहायता के अतिरिक्त होने वाला खर्च संस्था ने उठाया है।]

—कन्हैयालाल छाजेड़
मन्त्रीः—श्री अमोल जैन ज्ञानालय
गली नम्बर २, धूलिया (प.खा.)

१५-७-१९५८]

—: प्रास्ताविक :—

भव्यात्माओ !

संसार में सभी प्राणी अज्ञानान्धकार में भटकने के कारण नाना प्रकार के कष्ट पा रहे हैं। अँधेरे में यथार्थ ज्ञान के लिए प्रकाश की आवश्यकता होती है। प्रकाश दो प्रकार का होता है — द्रव्य प्रकाश और भावप्रकाश। सूर्य, चन्द्र, दीपक आदि का प्रकाश द्रव्यप्रकाश है, इससे भौतिक पदार्थ आँखों द्वारा दिखाई देते हैं। भाव प्रकाश (तीर्थंकर) देव का होता है, उससे आध्यात्मिक पदार्थ दिखाई देते हैं। इस ग्रन्थ में देव-सम्बन्धी यथाशक्ति परिचय देने का प्रयत्न किया गया है।

— देव —

देवों का सौन्दर्य अनुपम होता है। दिव्य आकृति धारण करने के कारण वे "देव" कहलाते हैं।

केवलज्ञान के कारण उनका दिव्य आत्मप्रकाश सारे संसार में प्रकट हो जाता है, इसलिए भी वे "देव" कहे जाते हैं।

ज्ञान, दर्शन और चारित्र ही मोक्ष का मार्ग है। जैसा कि आचार्य उमास्वामी ने अपने तत्त्वार्थसूत्र में कहा है —"सम्यग्-दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः।" शास्त्रकारों के शब्दों में यही बात यों कही गई है—

> नाण च दसण चेव, चरित्त च तवो तहा।
> एम मग्गुत्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरदंसिहिं॥

अर्थात् केवलदर्शी जिनवरों ने ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप—यही मोक्ष का मार्ग बताया है। कहने का आशय यह है कि जो मोक्षमार्ग का यथार्थ उपदेश देते हैं, वे "देव" कहलाते हैं।

सूर्य का जो प्रकाश दिखाई देता है, वह वास्तव में सूर्य के विमान का है; परन्तु देव की तो आत्मा ही स्वयं प्रकाशमान होती है।

—: अरिहन्त :—

यों तो प्रत्येक आत्मा मे दिव्य प्रकाश होता है, किन्तु कर्मों के सघन आवरणों में छिपा रहता है। तपस्या आदि साधनाओं के द्वारा जो ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय और अन्तराय इन चार घनघाति कर्मों की निर्जरा करते हैं, उनका आत्मप्रकाश प्रकट हो जाता है। कर्म ही आत्मा के वास्तविक शत्रु हैं, जैसा कि एक आचार्य कहते हैं—

अट्ठविहंपि य कम्मं, अरिभूयं होइ सव्वजीवाणं।
तं कम्ममरिं हंता, अरिहंता तेण वुच्चंति॥

अर्थात् सभी (संसारी) जीवों के लिए आठ प्रकार के कर्म शत्रु-रूप हैं। उस कर्म रूपी अरिगण (शत्रुओं) का जो हनन करते हैं, वे अरिहंत कहलाते है। अरिहत भी देव का ही वाचक शब्द है।

अरिहन्त को "अर्हन्त" भी कहते हैं। यह शब्द संस्कृत की "अर्ह पूजायाम्" धातु से बना है, इसलिए अर्हन्त का अर्थ है—पूज्य (भक्ति करने योग्य)। अर्हन्त देव मनुष्यों के ही नहीं, इन्द्रों के भी पूज्य हैं।

अरिहंत को "अरहंत" भी कहते है, जिसका संस्कृत रूपान्तर "अरथान्त" होता है। 'रथ' शब्द सब प्रकार के परिग्रह का

द्योतक है और 'अन्त' का अर्थ है—मृत्यु। इस प्रकार परिग्रह और मृत्यु से जो सर्वथा मुक्त हैं, वे "अरहत" देव हैं।

इन्हीं से मिलता-जुलता एक शब्द "अरुहन्त" भी है। 'रुह' धातु का अर्थ है-सन्तान या परम्परा। बीज से अंकुर पैदा होता है और अंकुर से बीज। इस प्रकार बीज और अंकुर की परम्परा शुरू हो जाती है। परन्तु यदि बीज को जला दिया जाय या भून दिया जाय तो फिर अंकुर पैदा नहीं होता। इसी प्रकार जिन्होंने कर्मरूपी बीज को जला दिया है और इसी कारण जो जन्म-मरण की परम्परा से मुक्त हो गये हैं, वे "अरुहन्त" कहलाते हैं। जैसा कि किसी कवि ने कहा है —

दग्धे बीजे यथाऽत्यन्तम्, प्रादुर्भवति नाऽङ्कुरः।
कर्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति भवाङ्कुरः॥

— वीतराग —

इस प्रकार अरिहत शब्द के भिन्न-भिन्न रूपों में अलग—अलग गुणों का परिचय प्राप्त होता है। देव के लिए अरिहंत शब्द जैसे विशेषण है, वैसे ही वीतराग भी विशेषण है। वकील, डाक्टर, सेठ, मुनीम आदि नाम किसी व्यक्ति के नहीं होते। जो वकालत करता है, वकील है। जो इलाज करता है, डाक्टर है। जो व्यापार करता है, सेठ है। जो सेठ का हिसाब सँभालता है मुनीम है। इस प्रकार इन शब्दों से अमुक व्यक्ति के अमुक गुणों का परिचय मिलता है। ठीक उसी तरह वीतराग शब्द भी व्यक्तिवाचक नहीं, गुणवाचक है। वीतराग शब्द से मालूम होता है कि यह व्यक्ति राग से रहित है।

वीतराग बनने के लिए वर्ण-जाति का या सम्प्रदाय का कोई बन्धन नहीं है। राग जिसका नष्ट हो चुका है, वह व्यक्ति वीतराग है, फिर भले ही वह किसी भी वर्ण, जाति या सम्प्रदाय का क्यों न हो। सिद्ध के पन्द्रह भेदों मे "स्वलिंगसिद्ध" और "अन्य-लिंगसिद्ध"-ये शब्द इसी बात को प्रकट कर रहे हैं।

स्कूल में हजारों विद्यार्थी पढ़ते है' किन्तु स्वर्णपदक तो विजेता को मिलता है, उसी प्रकार देव शब्द संसार में हजारों-लाखों के लिए प्रयुक्त होता है, किन्तु सच्चा देव तो वही है, जो राग को जीत चुका है। हमारा मस्तक केवल वीतराग को ही झुकाना चाहिये। जैसा कि एक जैनाचार्य ने लिखा है:—

भवबीजांकुरजलदा:,
रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य।
ब्रह्मा वा विष्णुर्वा
हरो जिनो वा नमस्तस्मै॥

—हरिभद्रसूरि:

अर्थात् संसार (जन्म-मरण-चक्र) रूपी बीज को अंकुरित करने में मेघ के समान जो रागादि है, उन्हें जिसने क्षय किया है, उसे नमस्कार है, फिर भले ही वह (ब्राह्मणों का) ब्रह्मा हो, (वैष्णवों का) विष्णु हो, (शैवों का) शिव हो या (जैनों का) जिन।

जिस मे गुण ही गुण हों, दोष बिल्कुल न हो, वही देव है। यह बात नीचे लिखे शब्दों में कही गई है:—

यस्य निखिलाश्च दोषाः,
न सन्ति सर्वे गुणाश्च विद्यन्ते।

ब्रह्मा वा विष्णुर्वा,
हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥
—हरिभद्रसूरि

सचमुच जो दोषों से सर्वथा रहित है, वही प्रणम्य परमात्मा है। हेमचन्द्राचार्य ने यह बात बहुत स्पष्टता के साथ इन शब्दों में प्रकट की है —

यत्र तत्र समये यथा तथा
योऽसि सोऽस्यभिधया यया तया।
वीतदोषकलुषः स चेद्भवान्
एक एव भगवन्! नमोऽस्तु ते ॥

अर्थात् किसी भी परम्परा (सम्प्रदाय) में, किसी भी रूप में, किसी भी नाम से आप क्यों न प्रसिद्ध हों-यदि आप दोषों की कलुषता से रहित हैं तो हे भगवन्! आप मेरे लिए एक ही हैं-आपको नमस्कार।

पुराणकारों ने-हिन्दुओं के आचार्यों ने भी रागद्वेष से रहित को ही देव मानते हुए घोषित किया है —

"रागद्वेषविनिर्मुक्तस्तं देव ब्राह्मणा विदुः ॥"
—शिवपुराण (ज्ञान संहिता २४।२६)

— देवों के प्रकार —

अब देवों के भेद पर थोड़ा सा विचार करें। देवों के दो प्रकार हैं —व्यापक और अव्यापक या साकार और निराकार अथवा तीर्थंकर और सिद्ध।

भापक का अर्थ है, बोलने वाले-उपदेश देने वाले। साकार का अर्थ है-शरीर वाले-आकृति वाले। तीर्थंकर का अर्थ है-धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले।

साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप चार प्रकार के संघ को ही तीर्थ कहते हैं। ऐसे तीर्थ को प्रस्थापित करने वाले तीर्थङ्कर कहलाते हैं।

--: अवर्णनीयता :--

तीर्थंकर देव के या परमात्मा के गुणों का वर्णन कितना भी किया जाय, अधूरा ही रहेगा। क्योंकि परमात्मा के गुण अनन्त हैं, इसलिए सबको वर्णन हो ही नहीं सकता! भले ही उनका वर्णन करने का प्रयत्न स्वयं सरस्वती ही क्यों न करे? कहा गया है:—

असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिन्धुपात्रे
सुरतरुवर शाखा लेखनी पत्रमुर्वी।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालम्
तदपि तव गुणानामीश! पारं न याति॥

अर्थात हे परमेश्वर! यदि समुद्ररूपी दवात में काजल के पहाड़ (के बराबर ढेर) को घोल कर स्याही बनाई जाय, कल्प-वृक्ष की मजबूत शाखा की कलम बनाई जाय और फिर पृथ्वी रूपी कागज पर स्वयं सरस्वती अनन्तकाल तक लिखती रहे तो भी आपके गुणों का पार नहीं पा सकती।

—: गुण-वर्णन :—

यह सब कुछ जानते हुए भी भक्त चुप नहीं रह सकता! क्यों कि उसे परमात्मा के गुणों का वर्णन करने में आनन्द आता है, इसलिए वह अपनी शक्ति के अनुसार वर्णन किये बिना नहीं रहता।

आचार्य अभयदेवसूरि ने अपने किसी ग्रन्थ के मंगलाचरण में लिखा है —

सर्वज्ञमीश्वरमनन्तमसङ्गमग्र्यम्
सार्वीयमस्मरमनीशमनीहमिद्धम्
सिद्धं शिवं शिवकर करणव्यपेतम्
श्रीमज्जिन जितरिपुं प्रयतः प्रणौमि ॥

अर्थात जिन्होंने रागद्वेष आदि शत्रुओं को जीत लिया है, उन शोभा युक्त जिनदेव को मैं सविधि प्रणाम करता हूँ। वे जिन देव कैसे हैं?

सर्वज्ञ हैं

सब कुछ जानते हैं। इन्द्र ने भगवान् की स्तुति जिन शब्दों में की है, उन्हें "शक्रस्तव" कहा जाता है। इन शब्दों में "सव्व-एणूणं सव्वदरिसीणं" ये दो शब्द भी आते हैं, इससे मालूम होता है कि स्वयं देवराज इन्द्र भी भगवान् की सर्वज्ञता और सर्वदर्शिता को स्वीकार करते हैं।

वे त्रिकाल त्रिलोक के समस्त भावों को प्रत्यक्ष जानते और देखते हैं। शास्त्रकार कहते हैं —अप्पा सो 'परमप्पा' आत्मा ही

परमात्मा है। 'सोऽहम' अर्थात् वही मैं हूँ। 'तत्त्वमसि' अर्थात् वही तू है। 'जीवो ब्रह्मैव नाऽपरम्' अर्थात् जीव ही ब्रह्म है, दूसरा नहीं। इन सब वाक्यों से मालूम होता है कि जो शक्ति परमात्मा में है, वही आत्मा में है—तब सवाल उठता है कि यदि परमात्मा सब जानते है और देखते है तो हम क्यों नहीं जानते देखते ?

इसके उत्तर में कहना है कि यदि किसी की आँखों पर काले कपड़े की आठ परतों वाली पट्टी बाँध दी जाय, तो देखने की शक्ति होते हुए भी वह देख नहीं पाता। इसी प्रकार आत्मा पर आठ कर्मों की पट्टी बंधी है, इसीलिए जब तक वह हट न जाय, तब तक शक्ति होते हुए भी आत्मा का उतना प्रकाश प्रकट नहीं हो पाता कि वह सब कुछ जान-देख सके। परमात्मा के कर्मों का आवरण नष्ट हो चुका है, इसीलिए वे 'सर्वज्ञ' कहलाये।

ईश्वर हैं

मालिक हैं, नौकर नहीं। स्वामी हैं, सेवक नहीं। स्वाधीन है, पराधीन नहीं। जो नौकर है, सेवक है, पराधीन है, वह ईश्वर नहीं हो सकता। जो किसी भी प्रकार के बन्धन मे बँधा है, वह ईश्वर नहीं हो सकता। जिनदेव को किसी भी प्रकार का बन्धन नहीं है, वे स्वतन्त्र है, इसी लिए ईश्वर है।

अनन्त हैं

अनन्त गुणो के धारक होने से "अनन्त" कहलाते है। करोड़ रूपये गिनने के लिए विशेष बुद्धिमत्ता चाहिये, मूर्ख नहीं गिन सकता। इसी प्रकार अनन्त गुणों को वही पहिचान कर अपना सकता है कि जिसकी बुद्धिमत्ता अनन्त हो।

भगवान् इसलिए भी अनन्त, कहलाते हैं कि वे लोक और अलोक के अनन्त पदार्थों को जानते हैं। उनकी शक्ति अनन्त है और उनका सुख भी अनन्त है।

इस विषय में प्रातः स्मरणीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषिजी म० सा० के द्वारा विरचित निम्नलिखित पंक्तियाँ प्रमाणभूत हैं —

अनन्त चारित्र अनन्त शक्तिधर, अनन्त जीव के हितकारी हैं।
सचित्त अचित्त अनन्त पदारथ, देखे ज्यों दर्पण मझारी हैं॥
अनन्त जीव प्रतिपालक साहिब, अनन्त वर्गणा निवारी हैं।
द्रव्य गुण पर्याय सकल में, भिन्न भिन्न करके उच्चारी हैं॥

इसलिए भी उन्हें अनन्त कहा गया है कि उनकी स्वाधीनता का, उनके ईश्वरत्व का कभी अन्त नहीं आता।

असंग हैं

भगवान कनक (लक्ष्मी या धन) और कामिनी (पत्नी) के संग से रहित हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ के संग से रहित हैं। व्यसनों के संग से रहित हैं, इसीलिए उन्हें 'असंग' कहा गया है।

यह ठीक है कि सोना मिट्टी से ही निकलता है, किन्तु इसी लिए मिट्टी सोने के भाव से खरीदी नहीं जा सकती। क्योंकि वहाँ सोना मिट्टी से लिपटा है। इसी तरह हमारी आत्मा भी कर्मों से लिपटी है, इसलिए हमें कोई परमात्मा नहीं कहता। परमात्मा तो केवल वे ही कहलाते हैं कि जो कर्मों के संग से रहित हैं, असंग हैं।

अग्रय हैं

जो असंग हैं, वे ही अग्रय कहलाते हैं। संसारी प्राणी कनक, कान्ता, विषय, कषाय, व्यसन और कर्मों के संग में फँसे हुए हैं, इसलिए जो असंग हैं वे जन-साधारण की अपेक्षा श्रेष्ठ या अग्रगण्य कहलाते है।

इसलिए भी परमात्मा को अग्र्य कहा गया है कि वे लोक के अग्रभाग में विराजमान होने के अधिकारी हैं। सिद्ध देव तो वहाँ पहुँच कर विराजमान हो ही गये हैं, किन्तु साकार सर्वज्ञ देवों ने भी वहाँ का रिजर्वेशन प्राप्त कर लिया है। इसलिए उन्हें भी अग्र्य कहा गया है, क्योंकि उनको उस स्थान पर निश्चित रूप से जाना है।

सार्वीय हैं

अग्र्य वे ही कहला सकते हैं कि जो सार्वीय (सब का कल्याण करने वाले) बनते हैं। भगवान् को शक्रस्तव में "धम्म-सारही" धर्म रूपी रथ को हांकने वाले कहा गया है। वे धर्मरथ मे अपने साथ ही अन्य अनेक भव्यजीवों को बैठा कर मोक्षनगर में ले जाते हैं।

एक पत्तन मे एक उदार सेठ रहते थे। एक दिन उन्हे विचार आया कि इस पत्तन में आर्थिक दशा बिगड़ जाने के कारण मेरे बहुत से मानव-बन्धु झोपड़ियों मे रहते है, रूखी-सूखी खाते हैं, फटे-टूटे कपड़े पहिनते है, इसलिए मेरा कर्त्तव्य है कि मैं उनको सहायता पहुँचाऊँ। दूसरे दिन उन्होंने सब को साथ ले कर व्यापार करने के लिए परदेश जाने के विचार से एक आदमी को भेज कर घर-घर सूचना करवा दी कि "जिसे भी व्यापार के लिए सेठजी

के साथ चलना हो, वह तैयार हो जाय—यदि उसके पास पूँजी न होगी तो पूँजी दी जायगी—व्यापार करना न आता होगा तो सिखाया जायगा।"

तीसरे दिन गणिम, धरिम, मेय और परिच्छेद्य-इन चारों प्रकार के पदार्थों से गाड़ियाँ भर कर सैंकड़ों मनुष्यों के साथ सेठजी रवाना हुए। रास्ते में एक अटवी आई। रातको वहीं पड़ाव डाला गया। सब लोग निश्चिन्त होकर सो गये, किन्तु सेठजी को जिम्मेदारी के कारण नींद नहीं आई। वे बैठे बैठे माला फिरा रहे थे कि कुछ दूर से "बचाओ बचाओ" की चिल्लाहट सुनाई पड़ी। माला छोड़कर सेठजी उस ओर गये तो देखते हैं कि एक आदमी को पेड़ से बाँध कर कुछ चोर उसे पीट रहे हैं। सेठजी की फटकार सुनकर चोर भाग खड़े हुए।

सेठजी ने उस बँधे हुए आदमी के बंधन खोले-उसके घावों पर मरहमपट्टी की और फिर उसे भी अपने साथियों में सम्मिलित करके परदेश में ले गये।

ठीक उसी प्रकार भगवान भी मोक्ष नगर में अनन्त सुख पाने के लिए जब जाते हैं, तब रास्ते में संसार रूपी अटवी में राग-द्वेष के बन्धन में फँस कर विषयकषाय की हंटर खाने वाले दुःखी प्राणियों को बचाकर उन्हें अपने साथ ले जाते हैं। सेठजी जैसे चार प्रकार के द्रव्य साथ ले गये थे, उसी प्रकार भगवान् भी ज्ञान, दर्शन, चारित्र और तप साथ ले जाते हैं।

भगवान् की "अभयदयाणं, चक्खुदयाणं, मग्गदयाणं" आदि अनेक विशेषणों से स्तुति की गई है। वे जीवों को अभय प्रदान करते हैं, क्यों कि यही सर्वश्रेष्ठ दान कहा गया है— "दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं॥" अभय देने के बाद ज्ञानचक्षु

अर्थात् विवेक प्रदान करते हैं। यदि आचरण न हो, तो कोरा विवेक किस काम का ? इसलिए विवेक देने के बाद मार्ग बताते हैं-अर्थात् आचरण सिखाते हैं। यह सब इसलिए करते हैं कि वे सब का कल्याण करने वाले हैं-सार्वीय हैं।

अस्मर हैं

निष्काम है—निर्विकार हैं-वासना से अलिप्त हैं। काष्ठ में जैसे अग्नि छिपी रहती है अथवा दियासलाई में जैसे ज्वाला छिपी रहती है, वैस ही सभी प्राणियों में वासना छिपी रहती है।

सार्वीय अर्थात् सबका कल्याण करने वाला वही बन सकता है जो कामवासना को जीत ले। उसे जीतना बड़ा कठिन है, क्यों कि उसका साम्राज्य बहुत दूर-दूर तक फैला हुआ है।

माण्डलिक राजा का १ देश में, वासुदेव का ३ खण्ड में और चक्रवर्ती का ६ खण्ड मे राज्य होता है, किन्तु कामदेव का राज्य तीन लोक मे होता है। देवलोक मे कामवासना का परिमाण कम नहीं है। कहते है कि एक-एक रतिक्रीड़ा में इन्द्र को काफी लम्बा समय लग जाता है ? तिर्च्छालोक मे पशुपत्तियों के और मनुष्य के काम का परिचय इस दोहे से मिलता है:—

काँकर पाथर जे चुगें, तिन्हें सतावै काम।
सीरा-पूरी खात जे, तिनकी जानें राम॥

कबूतर की जठराग्नि इतनी तीव्र होती है कि वह कंकर को चुग कर भी पचा लेता है—ऐसा सुनते हैं। कहने का आशय यह है कि कंकर जैसी निस्सार वस्तु खाने वाले कबूतर को भी काम-वासना सताती रहती है, तब हलुवा-पुरी जैसे सारयुक्त पदार्थों का भक्षण करने वाले मनुष्यों की वासना के विषय मे क्या कहा जाय ? इस विषय मे एक दृष्टान्त याद आ रहा है:—

राजगृही नगरी में महाराज श्रेणिक अपनी महारानी चेलना के साथ सानन्द रहते थे। एक दिन महाराज अपने महल की ऊँची मंजिल में रानी के साथ रात को टहल रहे थे कि सहसा उनकी नजर एक मकान पर पडी। वहाँ के भीतरी दृश्य को देख कर उनके मुँह से निकल पडा -धिक्कार है इसे।"

ये शब्द सुनते ही महारानी चौंक पडी और उसने विनय-पूर्वक पूछा -"नाथ! यहाँ तो इस समय मेरे सिवाय दूसरा कोई नहीं है। पूछती हूँ कि आपने धिक्कार किसे दिया है? क्या मुझसे कोई भूल हो गई?"

'नहीं प्रिये! तुम जैसी पतिपरायणा सुशीला पत्नी से कभी कोई भूल हो नहीं सकती। मैंने धिक्कार तुम्हे नहीं दिया है। लेकिन किसे दिया है? यह जानना भी व्यर्थ है। हम यहाँ के शासक हैं-अनेक तरह के विचार हमारे मन में आते-जाते रहते हैं, इस लिए धिक्कार का कारण मत पूछो।" महाराज ने कहा।

किन्तु नारीहठ के आगे उनकी टालमटूल नहीं चल सकी, इस लिए अन्त में उस मकान की ओर इशारा करते हुए महाराज ने कहा -"वह देखो। वहाँ का दृश्य देखते ही समझ में आ जायगा कि मैंने किसे धिक्कार दिया है।"

महारानी चेलना ने ज्योंही उस ओर नजर डाली त्यों ही उसे समझ में आगया कि महाराज ने कामदेव को धिक्कार दिया है। बात यह थी कि उस मकान में ८० ६० वर्ष के पति-पत्नी का एक जोडा रतिक्रीड़ा में लगा था। महाराज श्रेणिक को विचार आया कि जो कामदेव बुढापे में भी मनुष्य को सताता रहता है, उसे धिक्कार का पात्र ही समझना चाहिये।

महाराज ने उस घर का नम्बर नोट कर लिया और दूसरे दिन प्रातःकाल एक चाकर को वहाँ भेज कर बूढ़े और बुढ़िया को राजदरबार में बुलवा लिया।

महाराज के पास जाते समय साथ में कोई भेंट ले जाने का उस समय रिवाज था। इसलिए बूढ़े ने जवारी के चार दाने और बुढिया ने थोड़ी-सी राख एक पुड़िया में बाँध कर साथ ले ली। दरबार मे पहुँच कर दोनों ने अपनी अपनी भेंट राजा के सामने रख दी।

महाराज श्रेणिक को दी जाने वाली इस तुच्छ भेंट को देख कर उपस्थित सभासदों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। वे आपस में गुनगुनाहट और कानाफूसी करने लगे। सभा के कोलाहल को देख कर महाराज ने आगन्तुकों से कहाः—"आपकी इस भेंट में कोई रहस्य मालूम होता है, सो उसे प्रकट करके दर्शकों के आश्चर्य को शान्त कीजिये।"

यद्यपि महाराज इस भेंट के रहस्य को समझ गये थे, फिर भी उन्होंने आगन्तुकों के मुँह से ही खुलवाना ठीक समझा।

बूढ़े ने कहाः—"महाराज! जब तक जवारी खाता रहूँगा; तब तक वासना नहीं छूटेगी।" यही मेरी भेंट का आशय है।"

इसके बाद बूढ़ी ने कहाः—"महाराज! जब तक मेरे इस शरीर की राख नहीं हो जाती, तब तक वासना नहीं छूटेगी।" मेरी भेंट का बस यही रहस्य है।

कथा का आशय यह है कि संसार में प्राणिमात्र का हाल ऐसा ही है, जैसा उन बूढ़े बूढ़ियों को है। शास्त्रकारों ने आहार आदि चार संज्ञाओं में मैथुन को भी एक संज्ञा माना है। इससे

सिद्ध होता है, कि सभी ससारी जीवों में मैथुन की प्रवृत्ति है-काम वासना है, जिन्होंने इस काम पर विजय पाई है, वे परमात्मा धन्य हैं। इसीलिए तो उनके विशेषणों में "अस्मर" भी एक विशेषण है।

-. अनीश हैं -

उनका कोई मालिक नहीं है। पहले कहा जा चुका है कि काम का राज्य तीनों लोक में फैला हुआ है, इसलिए काम सबका मालिक है। उस काम को भी जिसने जीत लिया है, उसका मालिक दूसरा कौन हो सकता है? कोई नहा। परमात्मा अस्मर हैं-काम-विजेता हैं, इसीलिए अनीश भी हैं।

शालिभद्रजी का नाम कौन नहीं जानता। बड़े पुण्यशाली थे वे। उनकी ३२ पत्नियाँ थीं। स्वर्ग से बहुमूल्य भोग सामग्री से भरी हुई ३३ पेटियाँ प्रतिदिन आया करती थीं-उनके लिए। इस विषय में कोई शका न करनी चाहिये, क्यों कि प्रबल पुण्य के प्रताप से यह सब सम्भव है।

एक बार राजगृह नगरी के शासक महाराज श्रेणिक ने जब शालिभद्रजी की समृद्धि की तारीफ सुनी तो उनसे मिलने की इच्छा से मन्त्री अभयकुमार को साथ लेकर वे शालिभद्रजी के घर आये। वहाँ माता भद्रा ने उनका स्वागत किया और उन्हें अपने भवन की मजिलें दिखाती हुई चौथी मजिल में ले गई और वहाँ बिठा दिया। राजा और मन्त्री सुखासन पर बैठे बैठे उस मजिल की शोभा निरख रहे थे कि उधर माता छठी मजिल पर पहुँची और वहाँ से सातवीं मजिल पर बैठे हुए अपने पुत्र को पुकार कर कहने लगी —'बेटा! नीचे आओ। यहाँ के शासक आये हैं।'

ऊपर से आवाज आई —'माँ! तुम हो ही, फिर मुझसे

पूछने की क्या आवश्यकता है ? जो भी वस्तु आई है—सस्ती हो या मँहगी, खरीद कर डाल दो गोदाम में।'

इस बात से माँ ने समझ लिया कि बेटा इतना बड़ा हो गया, किन्तु अब तक अबोध है। व्यावहारिक ज्ञान से सर्वथा शून्य है। फिर जरा समझाते हुए बोली:—'बेटा ! वे कोई बेचने-खरीदने की वस्तु नहीं, इस नगरी के राजा हैं, अपने नाथ हैं।'

यह सुन कर माता की आज्ञा का पालन करने के लिए शालिभद्रजी नीचे आए और उन्हें प्रणाम भी किया, किन्तु मन ही मन विचार करने लगे कि मुझ पर भी कोई नाथ है ? मेरा भी कोई शासक है ? धिक्कार है मुझे ! मालूम होता है कि पूर्व जन्म में पुण्य करते समय मैंने कोई कसर रख दी होगी। खैर, अब तो मुझे ऐसा कठोर धर्माराधन करना चाहिये कि अगले जन्म में सचमुच मेरा कोई नाथ न रहे।'

और फिर अपने इन विचारों को उन्होंने साकार बना ही लिया अर्थात् संयम का पालन करके वे अनीश बनने के प्रयत्न में लग गये। भगवान् भी "अनीश" है और वे दूसरों को भी "अनीश" बनने का मार्ग बताया करते हैं।

~: अनीह हैं :~

इच्छारहित हैं-निर्लोभ हैं। लोभ इतना घातक है कि विशुद्ध संयम का आराधन करते हुए जो साधु ११ वे गुणस्थान तक जा पहुँचता है, उसे भी गिरा कर पहले गुणस्थान में ला पटकता है। सूत्रकार कहते हैं:—

कहो पीइं पणासेइ, माणो विणयणासणो।
माया मित्ताणि नासेइ, लोहो सव्वविणासणो॥

अर्थात क्रोध प्रेम को, मान विनय को, माया मित्रों को नष्ट करती है, किन्तु लोभ सर्वनाशक है। इस प्रकार चारों कषायों में से प्रत्येक को एक-एक गुण का नाशक बताया है, किन्तु लोभ को सारे गुणों का नाशक बता कर उस की भयकरता प्रकट की है।

इच्छाओं की पूर्ति करते रहने से एक दिन उनका अन्त आ जायगा ऐसा समझना भ्रमपूर्ण है, क्योंकि इच्छा का आकाश के समान अनन्त बताया है —

"इच्छा हु आगाससमा अणतिया ॥"

इसलिए इच्छा का अन्त करने का एक ही उपाय है कि उनका त्याग कर दिया जाय। जो इच्छाओं का त्याग करते हैं, वे अनीह कहलाते हैं। अनीश बनने के लिए अनीह बनना जरूरी है।

इद्ध हैं

तेजस्वी हैं। तेज भी दो प्रकार का होता है चर्मचक्षु से दिखाई देने वाला और ज्ञानचक्षु से दिखाई देने वाला। तपस्या का तेज चमड़े की आँखों से भी दिखाई देता है, किन्तु केवलज्ञान का तेज केवल ज्ञानी ही समझ सकता है। प्रोफेसर के ज्ञान को प्रोफेसर ही समझ सकता है, गँवार नहीं। आत्मतेज को आत्मज्ञ ही जान सकता है, अन्य नहीं।

हाँ, द्रव्यतेज को—बाह्यतेज को—स्थूलतेज को गँवार भी समझ लेता है। प्रोफेसर का वेश और चेहरा देख कर साधारण आदमी भी पहिचान लेता है कि "ये प्रोफेसर साहब हैं।" परन्तु उनके ज्ञान को वह नहीं समझ सकता।

किसी मनुष्य के चेहरे पर तेज होता है और किसी के

चेहरे पर नहीं इसका क्या कारण है? कॉच जितना स्वच्छ होगा, प्रतिबिम्ब भी उतना ही साफ आयगा। इसी प्रकार मन जितना शुद्ध होगा, उतना ही चेहरे पर तेज दिखाई देगा।

भगवान् की आत्मा से कर्मों का मैल दूर हट गया है, इसलिए उनकी तेजस्विता अनुपम है। कहा गया है:—

"चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।"

अर्थात् भगवान् चन्द्र से भी अधिक निर्मल हैं और सूर्य से भी अधिक प्रकाशमान् हैं।

सूर्य और चन्द्र को जब ग्रहण लगता है, तब वे कुछ समय के लिए निस्तेज हो जाते हैं किन्तु भगवान् कभी निस्तेज नहीं होते। उनकी तेजस्विता निरन्तर टिकी रहती है।

सिद्ध हैं

उनके सारे कार्य सिद्ध हो चुके है। इस प्रकार वे कृतकृत्य हैं, इसीलिए सिद्ध कहलाते है। संसार में मनुष्य जीवन-भर दौड़-धूप करता रहता है, फिर भी उसके कार्य अधूरे ही रह जाते हैं। सटाने मे ११६ वर्ष की उम्र में एक वृद्ध ने शरीर छोड़ा, ऐसा सुनते हैं, तो क्या उसके सारे कार्य पूरे हो गये थे? नहीं। सभी मनुष्यों का यही हाल है, किन्तु भगवान् ऐसे नहीं है वे अपने सारे कार्य पूर्ण कर चुके हैं—सिद्ध बन चुके हैं, इसीलिए वे इद्ध अर्थात् तेजस्वी हैं।

शिव हैं

पवित्र हैं—रोगरहित हैं—स्वस्थ हैं। कारण से ही कार्य होता है; वेदनीयकर्म के उदय से ही रोग होता है।

जले हुए चने से अकुर नहा निकलता और भुने हुए चने से भी। इसी प्रकार सिद्धदेव ने वेदनीय कर्म को जला दिया है और अरिहंत देव ने उसे भुन दिया है, इसलिए दोनों को रोगाकुर की उत्पत्ति नहीं होती, फिर भी शास्त्रकार कहते हैं कि भगवान् महावीर को एक बार रोग हुआ था, किन्तु उसे दस आश्चर्यों मे (अच्छेरों में) से एक आश्चर्य माना है। क्यो कि इस घटना को छोडकर पहले कभी किसी सशरीरी परमात्मा को रोग हुआ है-ऐसा नहीं सुना।

दूसरी बात यह है कि बीमारी प्राय असयम और अविवेक से पैदा होती है। परमात्मा पूर्ण सयमी और विवेकी होते हैं, इसलिए कभी बीमारी उनके शरीर में नहा पहुँचती। जिस कमरे में रात को बल्ब का प्रकाश फैला हो, उसमें अँधेरा कैसे घुसेगा?

— शिवकर हैं —

जो शिव है, वही शिवकर बन सकता है-जो तैराक है वही दूसरों को तिरा सकता है-जो स्वय स्वस्थ है, वही दूसरों को नीरोग रहने का मार्ग बता सकता है।

परमात्मा यद्यपि ससार से बहुत ऊँचे (सिद्धशिला अथवा लोकाग्रभाग में) विराजते हैं,फिर भी उनके स्मरण से सकटों में शाति मिलती है। वैज्ञानिकों की दृष्टि से सूर्य सवा नौ करोड़ माइल दूर है, फिर भी उसके उदय होने पर सरोवर के कमल खिल उठते हैं। यही बात भक्तों के लिए समझनी चाहिए। भगवान् से दूर रह कर भी वे उनके नामस्मरण से सदा प्रसन्न रहते हैं।

भगवान् का स्मरण निरन्तर होना चाहिये, सिर्फ दु ख में ही नहीं, सुख में भी। जैसा कि महात्मा कबीरदास ने कहा है —

दुख में सुमिरण सब करैं, सुख में करैं न कोय।
कबिरा जो सुख में करैं, दुख काहे को होय ?

बुद्धिमत्ता की बात तो यह है कि घर जलने से पहले ही कुआ खोद लिया जाय। दुःख आने से पहले ही नामस्मरण करते-रहने के लिए यह एक उदाहरण मात्र है।

साकार परमात्मा का शरीर उत्कृष्ट परमाणुओं से बना होता है, इसलिए जब निर्वाण होने पर उनका शरीर यही छूट जाता है, तो उसके परमाणु सारे लोक में फैल जाते हैं। कहते हैं कि वे ही परमाणु भक्तों के शरीर में पैदा होने वाले रोगों का शमन करते है। ठीक उसी प्रकार जैसे किसी बाजार के चौराहे पर खड़ा होकर कोई व्यक्ति इत्र का शीशा खोल कर आकाश में इत्र उछाल दे तो उसकी सुगंध के परमाणु दूर-दूर बैठे हुए मनुष्यों की नासिका के निकट पहुंच कर उन्हे सुख पहुँचाते है।

इस प्रकार परमात्मा स्वयं शिवरूप होने से शिवकर भी हैं।

—: करणव्यपेत हैं :—

कान, नाक, आँख, जीभ और स्पर्श–इन पाँचों इन्द्रियों से रहित हैं। सिद्धदेव तो अशरीरी होने से करणव्यपेत है ही, परन्तु अरिहंत देव इन्द्रियो के रहते हुए भी करणव्यपेत इसलिए कहलाते है कि उनकी इन्द्रियाँ काम नहीं आतीं। केवल ज्ञान और केवल दर्शन से वे समस्त पदार्थ जानते–देखते है, इसलिए उन्हें इन्द्रियों की पर्वाह नहीं है। बड़ी वस्तु किसी के पास हो तो वह छोटी वस्तु की पर्वाह नहीं करता। गाँव की औरतें जिन पीतल के गहनों को पहनती है, उनकी सेठानी को पर्वाह नहीं होती, क्योंकि उसके पास

सोने के आभूषण होते हैं। यदि कमरे में बडा बल्ब लगा हो तो उसके प्रकाश से सारी वस्तुएँ दिख जाती हैं, इसलिए देखने वाले को वहाँ दीपक की जरूरत नहीं रहती। यदि दीपक हो भी तो वह निरुपयोगी है। इसी प्रकार साकार परमात्मा की इन्द्रियाँ निरुपयोगी हैं, इसीलिए वे भी "करणव्यपेत" कहलाते हैं।

निराकार परमात्मा

अब तक जो विशेषण आये हैं, वे मुख्यत साकार परमात्मा के लिए और साधारणत साकार और निराकार दोनों प्रकार के देवों के लिए सगत होते हैं, परन्तु अब कुछ ऐसे विशेषणों का वर्णन किया जाता है कि जो मुख्यरूप से निराकार परमात्मा के विषय में हैं।

-- सिद्धदेव --

सस्कृत की "षिधू्‌" धातु से यह शब्द बना है, जिसका अर्थ है—शास्त्र या मगल। ससारी जीवों के लिए जिनका स्मरण शास्त्र के समान मार्ग दर्शक है अथवा जो स्मरण करने वालों के लिए मगलरूप हैं, वे सिद्ध देव हैं।

प्रसिद्ध होने से भी सिद्ध शब्द का सम्बन्ध मालूम होता है अर्थात् जिनका गुण समूह भव्य जीवों में प्रसिद्ध है, वे सिद्धदेव हैं।

एक आचार्य ने उनकी स्तुति में लिखा है —

> ध्मातं सितं येन पुराणकर्म
> यो वा गतो निर्वृतिसौधमूर्ध्नि।
> ख्यातोऽनुशास्ता परिनिष्ठितार्थो
> यः सोऽस्तु सिद्धः कृतमङ्गलो मे॥

अर्थात् जिन्होंने प्राचीनकाल से (आत्मा के साथ) बँधे हुए कर्मों को जला कर भस्म कर दिया है (वे सिद्ध हैं) अथवा जो निवृत्ति (मुक्ति) रूपी सौध (महल) में जा पहुँचे हैं, जिनके गुण विख्यात है, जिन्होने धार्मिक अनुशासन (नैतिक-नियमों का विधान) किया है और जिनके समस्त प्रयोजन सिद्ध हो चुके है, वे सिद्धदेव मेरा मंगल करने वाले हों।

प्राणी हैं

आचार्य कहते हैं कि सिद्धदेव भी प्राणी हैं, क्यों कि उनके भावप्राण होते है, भावप्राण चार हैः—ज्ञानप्राण, दर्शनप्राण, वीर्यप्राण और सुखप्राण।

संसारी जीवों के प्राण दस होते हैं—५ इन्द्रियाँ, ३ बल, १ श्वासोच्छ्वास और १ आयु। इन्हीं दस प्राणों में उपर्युक्त चार भावप्राण समाये हुए हैं। इन्द्रियप्राण में ज्ञान और दर्शन, बल-प्राण में वीर्य तथा श्वासोच्छ्वास और आयु में सुख समाया हुआ है। दस द्रव्यप्राण जहाँ विकृत है—नश्वर हैं, वहाँ भावप्राण शुद्ध और शाश्वत हैं। यही दोनो का खास अन्तर है।

सिध्द कैसे बनते हैं ?

माधवमुनिजी नामक एक धुरन्धर विद्वान् साधु हो गये हैं। उन्होने अपनी सिद्धदेव की स्तुति मे लिखा हैः—

कर पणट्ठ कम्मट्ठ अट्ठगुण युक्त मुक्त संसार।
पायो पद परमिट्ठ तास पद वन्दूं वारंबार॥

। आठ कर्मों को नष्ट करके जो परम विशुद्ध बन जाते हैं, वे सिद्ध पद प्राप्त कर लेते हैं। शास्त्रकार ने कर्मों का दुष्प्रभाव समझाने के लिए आत्मा को उस तुम्बे की उपमा दी है, जिस पर आठ बार मिट्टी का लेप किया गया हो और प्रत्येक लेप को बाद में सुखाया गया हो—ऐसा तुम्बा पानी पर तैर नहीं सकता। तुम्बे का स्वभाव तैरने का है, फिर भी मिट्टी के भार से वह जल में डूब जायगा। वैसे ही आठ कर्मों के भार से आत्मा संसार में डूबी हुई इधर से उधर भटक रही है। हाँ, यदि कर्मों की धीरे-धीरे निर्जरा होती जाय तो आत्मा का भार हल्का होता जाय और एकदम स्वच्छ होने पर वह सिद्धशिला तक ऊपर चढ़ जाती है, ठीक उसी प्रकार जैसे क्रमशः मिट्टी के आठों लेप नष्ट होने पर वह स्वच्छ तुम्बा पानी के ऊपर आ जाता है और तैरने लगता है।

दूसरा उदाहरण चन्द्रमा का है। चन्द्रमा जैसे शुक्ल पक्ष में क्रमशः बढ़ता हुआ पूर्णिमा को पूर्ण प्रकाशित हो जाता है, उसी प्रकार विशुद्ध संयम का पालन करते हुए चार घाती कर्मों के क्रमशः क्षय हो जाने से आत्मा में अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त शक्ति और अनन्त सुख की ज्योति जगमगाने लगती है—इसी को आत्मा की सिद्ध अवस्था कहते हैं।

अब जरा सिद्ध-देव के विशेषणों पर विचार करें कि सिद्धदेव हैं कैसे।

—: आठ गुणों वाले हैं :—

आठ कर्मों के नष्ट होने से उनमें आठ गुण प्रगट होते हैं। वे इस प्रकार हैं—(१) अनन्त ज्ञान, (२) अनन्त दर्शन, (३) क्षायिक सम्यक्त्व, (४) निराबाध सुख, (५) अटल अवगाहना, (६) अमूर्तिक, (७) अगुरुलघु (८) अनन्त वीर्य।

रोग से मुक्त होने पर स्वास्थ्य प्राप्त होता है, अविद्या दूर होने पर विद्वत्ता मिलती है, दरिद्रता हटने पर धनाढ्यता की प्राप्ति होती है; उसी प्रकार आठ कर्मों के नष्ट होने पर उपर्युक्त आठ गुणों की सिद्धि होती है। जिनकी आत्मा में उन आठ गुणों की सिद्धि है, वे सिद्ध कहलाते हैं।

—: अन्य गुण :—

सिद्धदेव के अन्य गुणों का वर्णन करते हुए श्री माधव मुनिजी ने अपनी सिद्धस्तुति मे आगे कहा है:—

अज, अविनाशी, अगम, अगोचर, अमल, अचल, अविकार।
अन्तर्यामी, त्रिभुवन स्वामी, अमित शक्ति भण्डार ॥

—: अज हैं :—

जिसका जन्म नहीं होता उसे 'अज' कहते हैं। संसार में सभी प्राणियों का जन्म होता है, किन्तु परमात्मा का जन्म नहीं होता। इसका कारण है—आयुकर्म का विनाश।

जिस घड़ी मे चावी नहीं दी जाती, वह बन्द हो जाती है, उसी प्रकार आयुकर्म की चावी छूट जाने से सिद्धदेव के जन्म-मरण की परम्परा बन्द हो गई है।

जन्म देते समय माता को जितनी वेदना होती है, जन्म लेने वाले को उस समय उससे भी करोड़ गुनी वेदना होती है। अँगूठी यदि तंग हो जाय तो उँगली से बाहर निकालते समय उँगली को कितना कष्ट सहना पड़ता है? इस प्रकार उँगली के कष्ट से (पैदा होने वाले) बच्चे के कष्ट का अनुमान लगाया जा सकता है।

परमात्मा जन्मते समय होने वाली इस भयकर वेदना से मुक्त हैं, क्योंकि वे जन्म नहा लेते—"अज" हैं।

अविनाशी हैं

वे कभी नष्ट नहीं होते अर्थात् उनके गुणों का कभी नाश नहा होता। ससार की भोग-सामग्री नश्वर है-शरीर भी। कहा गया है —

"पानी का पतासा है त्यूँ तन का तमासा है।"

परमात्मा को शरीर नही होता, इसलिए वे अविनाशी हैं।

दूसरी बात ज्ञान की है। मति, श्रुति, अवधि और मन-पर्याय-ये चारों ज्ञान अशाश्वत हैं-अस्थायी हैं, सिर्फ केवलज्ञान ही शाश्वत और स्थिर है। ससारी जीवों को जब तक केवलज्ञान नहा हो जाता, तब तक ज्ञान की दृष्टि से वे विनाशी कहलाते हैं। परमात्मा का ज्ञान अविनाशी है, इसलिए वे अविनाशी हैं।

तीसरी बात उनकी स्थिति के सम्बन्ध में है। जीव चौरासी लाख जीवयोनियों में भ्रमण करता-रहता है, उसकी स्थिति किसी भी योनि में स्थायी नहीं होती-अटल नहा होती, किन्तु भगवान् जब मोक्ष में पधारे हैं, तब से उनकी स्थिति स्थायी है और स्थायी रहेगी भी। क्योंकि उनकी स्थिति सादि अनन्त मानी गई है। इस दृष्टि से भी वे अविनाशी हैं।

अगम हैं

उनका वर्णन पूरी तरह से बुद्धि के द्वारा समझा नहीं जा सकता, क्योंकि वह अनुभव की वस्तु है। आत्मा अरूपी है और

उसके आठ रुचक प्रदेश भी। इसलिए उस स्वरूप को जाना नहीं जा सकता। उसे जानना बुद्धि के वस की बात नहीं है।

अगोचर हैं

अर्थात् अदृश्य हैं। आँखों से दिखाई नहीं देते। रूपी वस्तु ही आँखों से दिखाई देती है, सिद्धदेव अरूपी हैं, इसलिए अगोचर हैं।

दूसरी बात यह है कि जो वस्तु निकट हो, वही दिखाई देती है। सिद्धदेव यहाँ से सात राजू से भी ऊँचे हैं—इसलिए वे दिखाई नहीं देते।

अमल हैं

निर्मल हैं। मल से रहित हैं। मैल शरीर पर भी होता है। और मन पर भी। शरीर का मैल दूर करने के लिए मनुष्य स्नान करता है, किन्तु परमात्मा अशरीरी हैं, इसलिए शरीर के मैल से भी सर्वथा रहित हैं। मन का मैल है-संकल्प और विकल्प। इस मैल से भी वे रहित हैं-निर्विकल्प है। संसारी जीवों में कर्मों का जो मैल आता है, वह आस्रव के कारण आता है। सिद्धदेव आस्रव-रहित हैं इसलिए अमल है।

अचल हैं

स्थिर हैं—आवागमन से रहित है। संसार मे हम देखते हैं कि सेठ, शिक्षक, न्यायाधीश, साहित्यकार, कवि आदि एक स्थान पर आराम से बैठे-बैठे अपना कार्य करते है, किन्तु नौकर, चाकर चपरासी आदि दौड़ धूप करते रहते हैं। जो जितना अधिक भटकता है, वह उतना ही साधारण आदमी समझा जाता है। परमात्मा एकदम अचल हैं, इसलिए सबसे अधिक श्रेष्ठ हैं।

बहुत से भक्तों की मान्यता यह है कि भगवान् यहाँ आते हैं, इसीलिए वे संकटों के समय उसे बुलाते रहते हैं। मेरी समझ में भगवान् अशरीरी हैं, इसलिए आ नहीं सकते और यदि आते हैं तो फिर बड़े बड़े महात्माओं ने जो उन्हें "अचल" विशेषण दिया है, वह छिन जायगा।

हाँ, यदि भक्तों के बुलाने से भगवान् आते हों तो मैं उन्हें रोकूँगा नहीं। मैं तो सिर्फ जैन सिद्धान्त के अनुसार अपने विचार प्रकट कर रहा हूं कि जो शरीर से रहित हैं-आवागमन से या जन्ममरण से रहित हैं-अचल हैं अनन्त सुखों में रमण करते हैं, वे संसार में आ नहीं सकते। महलों में रहने वाला टूटी फूटी घास फूस की झोपड़ी मे आना और रहना पसन्द करेगा कैसे ?

अविकार हैं

विकार से रहित हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ से संसारी जीवों में विकार पैदा होता है। परमात्मा में कषाय का जरासा सूक्ष्म अंश भी नहीं है, इसलिए उनमें विकार की संभावना नहीं है।

अन्तर्यामी हैं

केवलज्ञानी हैं सर्वज्ञ हैं, इसलिए त्रिकाल त्रिलोक की कोई बात ऐसी नहीं है जो उनसे छिपी हो। वे सब कुछ जानते हैं-घट घट की बातें जानते हैं, इसलिए उन्हें अन्तर्यामी कहा गया है।

त्रिभुवन स्वामी हैं

त्रिलोक के नाथ हैं। सबसे बड़े हैं। अरिहंत को आचार्य, उपाध्याय, साधु, सुर, असुर, मनुष्य आदि सभी प्रणाम करते

हैं, क्यों कि वे इन सब से बड़े हैं, किन्तु सिद्ध-देव को अरिहंत भी वन्दन करते हैं। "णायाधम्मकहा" सूत्र में उल्लेख आता है कि दीक्षा लेते समय अरिहंत मल्लीनाथ ने "णमो सिद्धम्स" का उच्चारण करके सिद्धदेव को प्रणाम किया था-इससे सिद्ध होता है कि सिद्ध-देव सबसे बड़े होने के कारण सचमुच त्रिभुवन-स्वामी हैं।

शक्ति-भण्डार हैं

कवि कहता है कि वे अमित अर्थात् अपरिमित या अनन्त शक्ति के भण्डार हैं। उनकी शक्ति कभी नष्ट नहीं होती।

सिद्धदेव का सुख

सिद्धदेवों का सुख अनन्त है। इसलिए उनके सुख का पूरा वर्णन किया नहीं जा सकता। फिर भी शास्त्रकारों ने लिखा है:—

णवि अत्थि माणुसाणं, तं सोक्खं णवि य सव्वदेवाणं।
जं सिद्धाणं सोक्खं, अव्वाबाहं उवगयाणं॥
जं देवाणं सोक्खं, सव्वद्धा पिंडियं अणंतगुणं।
ण य पावइ मुत्तिसुहं, णंताहिं वग्गवग्गूहिं॥

—उववाईसूत्र

अर्थात् मनुष्यों को और सब देवों को वह सुख नहीं है, जो सिद्धों को है; क्योंकि सिद्धों का सुख स्थायी है। सब देवों का जितना सुख है, उसे इकट्ठा करके अनन्तगुना किया जाय और फिर उसे अनन्त बार वर्गाकार किया जाय तो भी मुक्ति-सुख की बराबरी में वह सुख खड़ा नहीं किया जा सकता!

हमारे जैसे क्षणिक सुख का अनुभव करने वाले सिद्ध देव के शाश्वत सुख का वर्णन करने में किस प्रकार असमर्थ हैं-यह एक दृष्टान्त के द्वारा सूत्रकारों ने समझाने का यत्न किया है —

जह णाम कोई मिच्छो, णगरगुणे बहुविहे वियाणंतो।
ण चएइ परिकहेउं, उवमाए तह असन्तीए॥
—उववाइसुत्त

एक नगरी में अजितशत्रु नामक राजा राज्य करते थे। एक दिन किसी घोड़े पर बैठ कर घूमने निकले तो रास्ता चूक जाने से एक जंगल में भटकते रहे और फिर थक कर एक पेड़ के नीचे बैठ गये, किन्तु प्यास बड़ी जोरों से लग रही थी। आस पास कहीं पानी का स्थान दिखाई नहीं दे रहा था। वे परेशानी से इधर-उधर देख रहे थे कि इतने ही में सामने से एक भील आता हुआ दिखाई दिया।

निकट आते ही राजा ने पहला प्रश्न किया —"भाई! मुझे प्यास लग रही है। यहाँ आस पास कोई जल का स्थान हो तो बताओ?"

भील की बगल में ही ठंडे पानी की एक सुराही भरी थी, इसलिए उसने तुरन्त वह पानी पिला दिया। इससे राजा को काफी शान्ति का अनुभव हुआ। इसके बाद दोनों ने एक दूसरे को अपना अपना परिचय दिया।

राजा सोच ही रहा था कि किस प्रकार उपकार का बदला चुकाऊँ कि सामने ही दो घुड़सवार आकर खड़े हो गये। राजा को पहिचानते देर न लगी कि ये अपने ही सैनिक हैं, जो मुझे ढूँढते हुए यहाँ आ पहुंचे हैं। उसने सैनिकों में से एक का घोड़ा माँग लिया और उस पर भील को बिठा दिया, फिर खुद भी अपने घोड़े

पर सवार हो गये। और फिर भील को साथ लेकर राजमहल को ओर चल पड़े। महलों में आकर राजा ने भील के बाल कटवाये, नये वस्त्राभूषण पहनाये और बढ़िया षड्रस भोजन करवाया। एक स्पेशल रूम में ठहराया और पाँचों इन्द्रियों की भोग सामग्री प्रदान की। सेवा मे अनेक चाकर नियुक्त कर दिये। इस प्रकार खूब आनन्द से उस भील के दिन कटने लगे।

एक दिन उसे अपने जंगल में रहने वाले बाल-बच्चों की याद आई, इसलिए उसने राजा से छुट्टी माँगी। इस पर पहले तो राजा ने कुछ दिन और रुक जाने का आग्रह किया. किन्तु जब देखा कि उसे जबर्दस्ती रोकने से दुःख होगा तो एक घुड़सवार को साथ देकर उसे उसी के जंगल में छोड़ आने की आज्ञा दे दी।

भील चला आया तो घर के आँगन मे खेलने वाले उसके बच्चे उसके पावों से लिपट गये। माता-पिता और उसकी पत्नी ने कुशल पूछते हुए कहा:—"हम सब तुम्हारे वियोग में बड़े व्याकुल हो गये थे! तुम्हें हुआ क्या? तुम कहाँ थे?"

इस पर भील ने कहा:-"मुझे यहाँ के शासक महाराज अजित शत्रु अपने शहर के राजमहल में ले गये थे और वहाँ मुझे बहुत अच्छी तरह रक्खा। बढिया मिठाई, फल, मेवा आदि खाने को मिलते थे। मधुर संगीत सुनने को मिलता था। बहुत आनन्द में रहा मैं वहाँ!"

कुटुम्बियों ने फिर पूछा:-"मिठाई का स्वाद कैसा था? संगीत का स्वर कैसा था? आनन्द कैसा था? थोड़ासा नमूना तो बताओ।"

इस पर वह चुप हो गया। स्वाद, स्वर और आनन्द का नमूना कोई कैसे बताये? हम घी रोज खाते है, उसका स्वाद भी

जानते हैं, किन्तु उसका स्वाद कैसा है ? यह कैसे बताया जाय ? कहने का आशय यह है कि भील ने जिन सुखों का अनुभव किया था, उन्हें भी जब वह बता नहीं सका। रोज घी खाया जाता है, फिर भी जब उसका स्वाद नहा बताया जा सकता तो फिर सिद्धों के शाश्वत सुख का-उस सुख का, जिसका हमने अनुभव तक नहा किया-वर्णन कैसे किया जा सकता है ?

सिध्दलोक

कर्मों के छूटने पर शरीर भी छूट जाता है तब सिद्ध देव की आत्मा कहाँ जाती है ? ऐसा श्री गौतम स्वामी के द्वारा पूछे जाने पर भगवान् ने फरमाया —

"अलोए पडिहया सिद्धा, लोयग्गे य पइट्ठिया ॥"

अर्थात सिद्धदेव अलोकाकाश से प्रतिहत हो (रुक) कर लोक के अग्रभाग में अवस्थित हो गये हैं। अलोकाकाश में कोई जीव नहीं जा सकता। क्योंकि वहाँ धर्मास्तिकाय नामक द्रव्य नहीं हैं, जो गति में सहायक होता है।

नरक, स्वर्ग और मर्त्यलोक में ही मनुष्य सुख-दुःख अर्थात पाप-पुण्य के फल भोगता है, सिद्धलोक में पुण्य पाप का सर्वथा क्षय हो जाता है।

दूकान की कमाई मकान में खाई जाती है-आराम से। मकान में कमाई नहीं-दूकान में आराम नहीं। दूकान के समान मर्त्यलोक है और मकान स्वर्ग। दूकान पर बेईमानी करने वाला जेल की हवा खाता है, उसी प्रकार मर्त्यलोक में पाप करने वाला नारकीय-यन्त्रणाएँ भोगता है। हाँ, जो निरन्तर तृप्त रहता है, उसे न कमाई की जरूरत है और न खाने की। सिद्धदेव ऐसे नित्य-तृप्त

हैं, इसलिए वे पुण्य-पाप कमाते नहीं और न भोगते हैं। जो नित्य प्रसन्न रहता है, उसे किसी भोग की इच्छा नहीं होती।

कहा गया है कि सिद्धलोक से आत्मा लौट कर पुनः संसार में नहीं आती। अनादिकाल स अब तक अनन्त जोव सिद्ध हो चुके हैं और वे पुनः लौट कर जब आते नहीं तब नये सिद्धों के लिए जगह कहाँ रहेगी? इस प्रश्न के समाधान में कहना है कि कमरे में सैंकड़ों लट्टुओं का प्रकाश हो, तो भी जगह नहीं रुकती और न वह अधिक प्रकाश मनुष्य के कार्य में बाधक बनता है। प्रकाश रूपी है, फिर भी जगह नहीं रोक पाता, अरूपी सिद्धों की आत्मा का प्रकाश जगह कैसे रोकेगा? सूत्रकार कहते हैं:—

जत्थ य एगो सिद्धो, तत्थ अणंता भवक्खयविमुक्का।
अण्णोण्णसमोगाढा, पुट्ठा सव्वे य लोगंते॥
—उववाईसूत्र

इसी बात को प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद श्री तिलोकऋषि जी म० ने अपने सिद्धाष्टक मे यों प्रकट की है:—

"प्रत्येक एकमेक आप व्याप हो गुणागरं॥"

उपसंहार

अरिहंत और सिद्ध देव के विषय मे जितना अधिक कहा जाय, उतना ही थोड़ा मालूम होता है। जो कुछ मैंने अब तक कहा है—मुझे आशा नहीं है कि वह समुद्र में एक बूँद की बराबरी भी कर सकेगा। और फिर अपनी छोटी-सी बुद्धि के अनुसार जो कुछ मैं कह पाया हूँ वह भी मेरा अपना नहीं, **शास्त्रोद्धारक—**

बालब्रह्मचारी--जैनदिवाकर--जैनाचार्य-परमपूज्य-प्रातःस्मरणीय गुरुदेव श्री अमोलकऋषिजी महाराज से पाया हुआ प्रसाद मात्र है। उन्हा की कृपा के फलस्वरूप मेरी वाणी को थोडी-बहुत गति मिल सकी है, इसलिए उनके उपकार से में जीवन भर उऋण नहीं हो सकता।

जो पिपासु है, सरोवर के निकट जाने पर उसकी प्यास मिटती है, ठीक उसी प्रकार आगम भी एक सरोवर है, जिसमें अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, श्रद्धा निक्षेप, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप नयवाद कर्मवाद, स्याद्वाद, सप्तभंगी आदि अनेक कमल खिले हैं। जो जिज्ञासु आगमरूपी सरोवर के निकट जाता है, उसकी जिज्ञासा शान्त होती ही है, किन्तु जो प्यासा मनुष्य अस्वास्थ्य आदि के कारण सरोवर तक पहुँचने में असमर्थ है, उसके पास कलसे के (कुंभ के) द्वारा पानी पहुँचाया जाता है। यह पुस्तक भी एक ऐसा ही कलसा है, जिसमें देव सम्बन्धी मूलपाठों का जल भरा गया है। जो अर्द्धमागधी भाषा नहीं समझते, उनकी भी जिज्ञासा शान्त हो-इस दृष्टि से इसमें प्रत्येक मूलपाठ का हिन्दी अर्थ भी दिया गया है। कठिन शब्दों की व्याख्या और पारिभाषिक शब्दों की टिप्पणी भी कहां-कहां दे दी गई है।

अन्त में परम-उपकारी प्रसिद्धवक्ता पंडितरत्न उपाध्याय श्री आनन्दऋषिजी महाराज को इस प्रसंग पर श्रद्धापूर्वक याद किये बिना नहीं रह सकता, जिन्होंने अपने बहुत से आवश्यक कार्यों के रहते हुए भी इस पुस्तक का संशोधन करने के लिये समय निकालने की कृपा की।

इसके बाद अपने गुरुभ्राता दूरदर्शी महात्मा मुल्तानऋषि जी महाराज तथा भूतपूर्व प्रवर्त्तिनी परम विदुषी महासती श्री

सायरकुँवरजी म० की ओर से इस कार्य के लिए मुझे समय-समय पर जो प्रेरणा और प्रोत्साहन मिलता रहा है, उसके लिए इन दोनों को जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी ही मालूम होगी।

भूमिका और संकलन में काव्यतीर्थ साहित्यविशारद पं० श्री शान्तप्रकाशजी "सत्यदास" [बड़ीसादड़ी (मेवाड़) निवासी] का तथा सम्पादन-कार्य में बीकानेर (राजस्थान) के निवासी श्रीमान् पं० बेचरचन्दजी बाँठिया "वीरपुत्र" न्यायतीर्थ-व्याकरण-तीर्थ-सिद्धान्तशास्त्री को काफी अच्छा सहयोग रहा है, जिसे मैं भूल नहीं पा रहा हूँ।

सटाना (नासिक)
२० जुलाई १६५८ ई.

—कल्याणऋषि

श्रीमान् डूँगरवालजी
कुटुम्ब-परिचय

श्रीमान् सेठ छीतरमलजी डूँगरवाल बीजलपुर (नि० खण्डवा) के निवासी हैं। आपके पूर्वज रास (मारवाड़) में रहते थे, किन्तु लग भग सौ वर्ष पहले व्यापार के लिए वे लोग पैदल-यात्रा करके इधर आ गये। आपके पिताजी श्री मगनलालजी का जन्म यहीं हुआ था। श्रीमान् बच्छराजजी आपके दादा थे।

शिक्षण कम होने पर भी आपने वाणिज्य में काफी प्रतिष्ठा पाई है। बचपन से ही कड़ा परिश्रम करके आपने खेती में खूब धन उपार्जित किया है। गोंडवाना चौखले के आप प्रमुख श्रावकों में से एक हैं। आपके तीन पुत्र हैं—गणेशमलजी, रंगलालजी और उदयराजजी। एक पुत्री है—सुन्दरबाई, जो पथाना में परणाई गई है। आपकी धर्म पत्नी हैं—सौ० सुश्राविका श्रीमती धनीबाई जो बड़ी तपस्विनी हैं।

गुण

सुनते हैं कि संवत १९६१ से आपकी धर्म श्रद्धा बढ़ती रही है, जिसके फलस्वरूप आप बड़ी सावधानी से धार्मिक नियमों का पालन करते हैं। प्रात काल और सायंकाल प्रतिक्रमण के अतिरिक्त प्रतिदिन सामायिक ही नहीं करते, शील का भी पालन करते हैं। आप धर्म की दलाली

करने में बड़े चतुर हैं। अपने क्षेत्र में सन्तों का चातुर्मास करवाने के लिए आप बड़े उत्सुक रहते हैं। आपका स्वभाव सरल है। इरगढ़ में जब चौमासा हुआ था, तब आप सन्तों की सेवा करने में तन-मन धन से कभी पीछे नहीं रहे। सत्संग के आप बड़े प्रेमी हैं, इसीलिए हर साल अपने कुटुम्ब के साथ यात्रा करके धर्मोपदेश सुनने का चौमासे के दिनों में लाभ उठाते रहते हैं।

आप बड़े तपस्वी हैं। वेले-तेले तो आपने बहुत-से कर डाले हैं, किन्तु मल्कापुर में एक बार आपने ११ उपवास एक साथ करके अपनी शक्ति का परिचय दिया था। आपकी उम्र ६८ वर्ष की है।

यों तो आप हर साल भिन्न-भिन्न संस्थाओं को आर्थिक सहायता करते ही रहते हैं, किन्तु एक निश्चित रकम धर्म खाते दान करते रहने का आपने नियम ही ले लिया है। इससे आपकी दानवीरता का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। इस पुस्तक में आर्थिक सहायता भेजने के लिए मैं आपका आभारी हूँ।

गली नं. २
धूलिया (प. खा.)

—कन्हैयालाल छाजेड़
मन्त्री—श्री अमोल जैन ज्ञानालय

श्रीमान् छीतरमलजी डूंगरवाल, वीजलपुर

—: विषय-सूची :—

अरिहन्त देव

(विविध प्रश्नोत्तर)

सिद्ध देव

शुद्धि-पत्र

पुस्तक पढने से पहले कृपया निम्नलिखित अशुद्धियाँ ठीक करलें —

पृष्ठांक	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२	२३	की चि	कि चि
६	२	नाम कम	नामकर्म
८	३	प्रायश्चित	प्रायश्चित्त
,,	५	से वाले	वाले
१२	१३	हू गौ	हैं गौ
१४	१०	महिय	महिम
१६	४	खिता	खित्ता
१७	७	विचारती	विचरती
,,	६	और	और ८
,,	२४	दृष्ट	दृष्ट
१६	१३	विरहति	विहरति
,,	१६	करिस्सामो	करिस्सामि
२०	८	अग्ठ	आठ
२१	७	एादुतरा	एादुत्तरा
,,	२१	रूचक	रुचक
२२	१६	समय	समय
२३	१२	तव	तव
२४	६	अलतुसा	अलंबुसा
२५	१६	पएच्चे	पएणचे
३३	२१	आर.	अरि
३४	१४	प्रात	प्राप्त
३६	६	शकेन्द्र	शक्रेन्द्र
,,	१७	सम	सव
४१	६	कागंगरों	कारीगरों
४३	२३	उपर	ऊपर
४८	२१	हैं	है
,,	२२	असख्यात	असंख्यात
५२	३	चत्तली	चत्ताली
५३	२३	अव	अव
५६	८	घटा	घटा,
,,	१७	बह	वह
,,	२२	इउजाइ	इज्जाइ
,,	२३	वज्जिया	वज्जिया
६४	३	सागमी	सामग्री
,,	५	अनिका	अनीका
,,	११	सिद्धाथदि	सिद्धार्थादि
६५	६	विंह	विह
७०	२६	सुश्रूपा	शुश्रूपा
७१	१५	तपश्चात	तत्पश्चात्
७६	५	आप्या	अप्पा
८४	४	ने	मैं
८७	८	—१	(१)
,,	२३	स्त्री	(८) स्त्री
८६	१०	वद्धंचे	वद्धंते
,,	,,	वद्धंमान,	वद्धंमा
९७	४	लल	लाल
१०१	२	भगवान्	भगवान्
,,	२२	स्वाकार	स्वीकार

पृष्ठांक	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०२	१०	वसिता	वसित्ता
१०३	१७	भविर्नि	भाविनि
१०३	१९	दोने	होने
१०४	१८	देना	देना था,
१०४	२०	असर	असुर
११०	१७	राव	रात्र
११२	१२	इमे दस रा०	रा०
११३	१०	वाखी	वाली
११३	१०	पृष्ट	पृष्ठ
११४	१४	अतिम	अंतिम
११९	२५	प्ररुपित	प्ररूपित
१३०	३	रहीत	रहित
१३०	१२	उतरा०	उत्तरा०
१४४	१६	केशवल	केवल
१४९	२१	समुद्राय	समुदाय
१५१	१७	अर्थांत्	अर्थात्
१५१	१९	नड़ी	नहीं
१५२	६	केसलि०	कोसलि०
१५७	८	देदे	देते
१६०	२६	चावीस	चौवीस
१६३	५	ढाणाग	ठाणांग
१६८	७	शायद्	शायद

पृष्ठांक	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७४	२१	भग—	भगवान्
१७७	५	वेमणिया	वेमाणिया
१८८	१०	पूर्त	पूर्व
९६	१०	महावार	महावीर
१९६	१७	महावार	महावीर
१९६	१७	सर्वदर्शी	सर्वदर्शी
२०३	१०	स्खने	रखने
२२७	१४	चदन	चन्दन
२२८	२०	तानो	तीनों
२२८	२१	के	ने
२२८	२७	वायुकाय	वायुकाय की
२३०	१६	श्रेष्ट	श्रेष्ठ
२३१	३	विपय	विषय
२३१	८	शरीर का	शरीर को
२३२	१२	लोगगम्मि	लोगग्गम्मि
२३२	२२	ड्ध्ययन	अध्ययन
२३८	६	आलोका०	अलोका०
२३९	१५	देखते	देखते हैं
२४१	३	अभि०	आभि०
२४३	२	ह्रस्व	ह्रस्व
२५९	२	थैसे	जैसे

॥ देव ॥

१—अर्हत्कीर्त्तन

लोगस्स उज्जोयगरे, धम्मतित्थयरे जिणे।
अरिहंते कित्तइस्सं, चउवीसं पि केवली ॥१॥

उसभमजियं च वंदे, संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं, जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥२॥

सुविहिं च पुप्फदंतं, सीयल सिज्जंस वासुपुज्जं च।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥३॥

कुंथुं अरं च मल्लिं, वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥

एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसं पि जिणवरा, तित्थयरा मे * पसीयंतु ॥५॥
कित्तिय वंदिय महिया, जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा।
आरुग्गबोहिलाभं, समाहिवरमुत्तमं दितु ॥६॥
चंदेसु निम्मलयरा, आइच्चेसु अहियं पयासयरा।
सागरवरगंभीरा, सिद्धा सिद्धि मम दिसंतु ॥७॥
—आवश्यक सूत्र

अर्थ—स्वर्गलोक, नरकलोक और मर्त्यलोक अर्थात् उर्ध्व-लोक, अधोलोक और तिर्च्छालोक, इन तीनों लोकों में धर्म का उद्योत करने वाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले और राग-द्वेष रूप अन्तरङ्ग शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाले चौबीस केवलज्ञानी तीर्थङ्करों की मै स्तुति करूँगा ॥ १ ॥

१ श्री ऋषभदेवजी, २ श्री अजितनाथजी, ३ श्री संभवनाथजी, ४ श्रीअभिनन्दनजी, ५ श्री सुमतिनाथजी, ६ श्री पद्मप्रभजी, ७ श्री सुपार्श्वनाथजी, ८ श्री चन्द्रप्रभजी, ९ श्री सुविधिनाथजी, (श्री पुष्पदन्तजी), १० श्री शीतलनाथजी, ११ श्री श्रेयांसनाथजी, १२ श्री वासुपूज्यजी, १३ श्री विमलनाथजी, १४ श्री अनन्तनाथजी १५ श्री धर्मनाथजी १६ श्री शान्तिनाथजी १७ श्री कुंथुनाथजी,

* टिप्पणी—भगवान् राग द्वेष रहित हैं, इसलिए वे किसी पर न द्वेष करते हैं और न किसी पर प्रसन्न होते हैं और न किसी को कुछ देते ही हैं परन्तु उनका ध्यान करने से चित्त निर्मल होता है और चित्त शुद्धि द्वारा इच्छित फल की प्राप्ति होती है। जिस तरह की चिन्तामणि रत्न जड़ होते हुए भी उससे मनवाछित फल की प्राप्ति होती है ॥

१८ श्री अरनाथजी, १९ श्री मल्लिनाथजी, २० श्री मुनिसुव्रत स्वामीजी, २१ श्री नमिनाथजी, २२ श्री अरिष्टनेमिजी, (नेमिनाथजी) २३ श्री पार्श्वनाथजी, २४ श्री वर्द्धमानस्वामीजी (महावीरस्वामीजी)। मैं इन चौवीस तीर्थङ्करों की स्तुति करता हूँ और इनको नमस्कार करता हूँ॥ २-३-४॥

उपरोक्त प्रकार से मैंने जिनकी स्तुति की है, जो कर्म-मल से रहित हैं, जो जरा (बुढापा) और मरण इन दोनों से मुक्त हैं और जो तीर्थ के प्रवतक हैं वे चौबीस जिनेश्वर मुझ पर प्रसन्न होवें॥ ५॥

नरेन्द्रों, नागेन्द्रों तथा देवेन्द्रों तक ने जिनका वाणी से कीर्तन किया है, काया से वन्दन किया है और मन से भावपूजन किया है, जो सम्पूर्ण लोक में उत्तम हैं, और जो सिद्धिगति (मोक्ष) को प्राप्त हुए हैं वे भगवान् मुझको मोक्ष प्राप्ति के लिए आरोग्य बोधिलाभ तथा श्रेष्ठ समाधि प्रदान करें अर्थात् समकित की प्राप्ति करावें॥ ६॥

जो चन्द्रमाओं से भी अधिक निर्मल हैं, सूर्यों से भी विशेष प्रकाशमान हैं और स्वयम्भूरमण नामक महासमुद्र के समान गम्भीर हैं, ऐसे सिद्ध भगवान मुझको सिद्धि (मोक्ष) देवें॥७॥
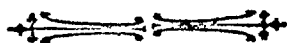
२—तीर्थंकरों के माता-पिता

वर्तमान चौवीसी के तीर्थंकरों के माता-पिताओं के नाम बताते हुए कहा गया है:—

जंबूद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे णं ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थयराणं पियरो होत्था । तंजहा—

णाभी य जियसत्तू य, जियारी संवरे इय ।
मेहे धरे पइट्ठे य, महासेणे य खत्तिए ॥ १ ॥
सुग्गीवे दढरहे विण्हू, वसुपुज्जे य खत्तिए ।
कयवम्मा सीहसेणे, भाणू विस्ससेणे इ य ॥२॥
सूरे सुदंसणे कुंभे, सुमित्तविजए समुद्दविजए य ।
राया य आससेणे य, सिद्धत्थे च्चिय खत्तिए ॥३॥
उदितोदियकुलवंसा, विसुद्धवंसा गुणेहिं उववेया ।
तित्थप्पवत्तयाणं, एए पियरो जिणवराणं ॥ ४ ॥

—समवायांग सूत्र

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र मे इस अवसर्पिणी काल मे चौवीस तीर्थंकर हुए । उनके पिताओं के नाम क्रमशः इस प्रकार हैं—१ नाभिराजा । २ जितशत्रु । ३ जितारि । ४ संवर । ५ मेघ । ६ धर । ७ प्रतिष्ठ । महासेन । ६ सुग्रीव । १० दृढरथ ।

११ विष्णु । १२ वसुपूज्य । १३ कृतवर्मा । १४ सिंहसेन । १५ भानु । १६ विश्वसेन । १७ शूर । १८ सुदर्शन । १९ कुम्भ । २० सुमित्र । २१ विजय । २२ समुद्रविजय । २३ अश्वसेन । २४ सिद्धार्थ ।

उन्नत और विशुद्ध कुल में उत्पन्न राजा के गुणों से युक्त ये उपरोक्त तीर्थ को प्रवर्ताने वाले तीर्थङ्करों के पिता थे ।

जंबूदीवे ण दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थयराण मायरो होत्था । तंजहा—

मरुदेवी विजया सेणा, सिद्धत्था मंगला सुसीमा य ।
पुहवी लक्खणा रामा, णंदा विण्हू जया सामा ॥१॥
सुजसा सुव्वया अइरा, सिरियादेवी पभावई पउमा ।
वप्पा सिवा य वामा, तिसला देवी य जिणमाया ॥२॥

—समवायांग सूत्र समवाय १५७

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के इस अवसर्पिणी काल में चौवीस तीर्थङ्कर हुए थे । उनकी माताओं के नाम इस प्रकार थे—१ मरुदेवी । २ विजया । ३ सेना । ४ सिद्धार्था । ५ मङ्गला । ६ सुसीमा । ७ पृथ्वी । ८ लक्षणा । ९ रामा । १० नन्दा । ११ विष्णु १२ जया । १३ श्यामा । १४ सुयशा । १५ सुव्रता । १६ अचिरा । १७ श्री । १८ देवी । १९ प्रभावती । २० पद्मावती । २१ वप्रा । २२ शिवा । २३ वामा । २४ त्रिशलादेवी । ये तीर्थङ्कर भगवान् की माताओं के नाम थे ।

३—तीर्थंकरत्व की प्राप्ति

तीर्थंकर नामकर्म बांधने के वीस कारणों का उल्लेख करते हैं:—

इमेहिं य णं वीसाएहिं य कारणेहिं आसेवियबहुली-कएहिं तित्थयरणामगोयं कम्मं णिव्वत्तिंसु—

अरहंतसिद्धपवयण, गुरुथेर बहुस्सुए तवस्सीसु ।
वच्छलया य तेसिं, अभिक्ख णाणोवओगे य ॥१॥
दंसणविणए आवस्सए, सीलव्वए णिरइयारं ।
खण लव तव च्चियाए, वेयावच्चे समाही य ॥२॥
अपुव्वणाणगहणे, सुयभत्ती पवयणे पभावणया ।
एएहि कारणेहिं, तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥३॥

—ज्ञाता सूत्र अध्ययन ८

उन्नीसवे तीर्थंकर श्री मल्लिनाथ भगवान् के पूर्वभव के जीव श्री महाबल अनगार ने इन बीस बोलों का एक बार आसेवन करने से तथा बार बार आसेवन करने से तीर्थङ्कर नामगोत्र कर्म का बन्ध किया था। वे बीस बोल इस प्रकार है—

(१) घाती कर्मों का नाश किये हुए, इन्द्रादि द्वारा वन्दनीय अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन सम्पन्न अरिहन्त भगवान् के गुणों की

स्तुति एवं विनय भक्ति करने से जीव को तीर्थङ्कर नामकर्म का बन्ध होता है। इसी प्रकार—

(२) सकल कर्मों के नष्ट हो जाने से कृतकृत्य बने हुए, परमसुखी, अनन्त ज्ञान अनन्त दर्शन के धारक, लोकाग्र स्थित सिद्धशिला के ऊपर विराजमान सिद्ध भगवान् की विनयभक्ति एवं गुणग्राम करने से।

(३) सर्वज्ञ भगवान् द्वारा प्ररूपित शास्त्र का ज्ञान प्रवचन कहलाता है। उपचार से प्रवचन ज्ञान के धारक संघ (साधु साध्वी श्रावक श्राविका) को भी प्रवचन कहते हैं। विनय भक्ति पूर्वक प्रवचन का ज्ञान सीख कर उसकी आराधना करना, प्रवचन के ज्ञाता की विनय भक्ति करना, उनका गुणोत्कीर्तन करना, तथा उनकी आशातना टालना आदि से।

(४) धर्मोपदेशक गुरु महाराज की बहुमान पूर्वक भक्ति करने से, उनके गुण प्रकाशित करने से एवं आहार वस्त्रादि द्वारा सत्कार करने से।

(५) वयस्थविर, श्रुतस्थविर और दीक्षा पर्याय स्थविर इन तीनों प्रकार के स्थविर महाराज की विनय भक्ति करने से, प्रासुक आहारादि द्वारा सत्कार करने से तथा उनके गुणग्राम करने से।

(६) प्रभूत श्रुतज्ञानधारी मुनि बहुश्रुत कहलाते हैं। बहुश्रुत के तीन भेद हैं—सूत्र बहुश्रुत, अर्थबहुश्रुत, उभय (सूत्र अर्थ) बहुश्रुत। सूत्र बहुश्रुत की अपेक्षा अर्थबहुश्रुत प्रधान होते हैं और अर्थबहुश्रुत की अपेक्षा उभय बहुश्रुत प्रधान होते हैं। इनकी वन्दना नमस्कार रूप भक्ति करने से, उनके गुणों की प्रशंसा करने से, आहारादि द्वारा सत्कार करने से तथा अवर्णवाद और आशातना को टालने से।

(७) अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रसपरित्याग, काया-क्लेश और प्रतिसंलीनता ये छह बाह्य तप है। प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य, स्वाध्याय, ध्यान और व्युत्सर्ग ये छह आभ्यन्तर तप है। इनका सेवन करने से वाले तपस्वी कहलाते है। ऐसे तपस्वियो की विनयभक्ति करने से, उनके गुणो की प्रशंसा करने से, आहारादि द्वारा उनका सत्कार करने से तथा उनका अवर्णवाद और आशातना को टालने से।

(८) ज्ञान मे निरन्तर उपयोग रखने से।

(९) निरतिचार शुद्ध सम्यक्त्व को धारण करने से।

(१०) ज्ञान और ज्ञानी का यथायोग्य विनय करने से।

(११) भाव पूर्वक शुद्ध आवश्यक-प्रतिक्रमण आदि कर्तव्यों का पालन करने से।

(१२) निरतिचार शील और व्रत यानी मूलगुण और उत्तरगुणों का पालन करने से।

(१३) सदा सवेग भावना और शुभ ध्यान का सेवन करने से।

(१४) यथाशक्ति बाह्य तप और आभ्यन्तर तप करने से।

(१५) साधु महात्माओं को निर्दोष प्रासुक अशनादि का दान देने से।

(१६) आचार्य, उपाध्याय, स्थविर, तपस्वी, ग्लान, नव-दीक्षित, धार्मिक, कुल, गण, संघ इनकी भावभक्ति पूर्वक वैयावच्च करने से जीव तीर्थंकर नामकर्म बाँधता है। यह प्रत्येक वैयावच्च (वैयावृत्य) तेरह प्रकार का है—१ आहार लाकर देना, २ पानी

लाकर देना। ३ आसन देना। ४ उपकरण की प्रतिलेखना करना। ५ पैर पूँजना। ६ वस्त्र देना। ७ औषधि देना। ८ मार्ग में सहायता देना। ९ दुष्ट चोर आदि से रक्षा करना। १० उपाश्रय में प्रवेश करते हुए वृद्ध या ग्लान साधु की लकडी पकड़ना। ११-१३ उच्चार, प्रस्रवण और श्लेष्म के लिए पात्र देना।

(१७) गुरु आदि का कार्य सम्पादन करने से एवं उनका मन प्रसन्न रखने से।

(१८) नवीन ज्ञान का निरन्तर अभ्यास करने से।

(१९) श्रुत की भक्ति और बहुमान करने से।

(२०) प्रवचन की प्रभावना करने से।

इन बीस बोलों की भावपूर्वक आराधना करने से जीव तीर्थंकर नामकर्म बाँधता है।

४–देवों के प्रकार

(१) कइविहा णं भंते ! देवा पण्णत्ता ? गोयमा ! पंचविहा देवा पण्णत्ता तंजहा—भवियदव्वदेवा, णरदेवा, धम्मदेवा, देवाहिदेवा, भावदेवा ।

(२)से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ भवियदव्वदेवा भविय-दव्वदेवा ? गोयमा ! जे भविए पंचिंदिय तिरिक्खजोणिए वा मणुस्से वा देवेसु उववज्जित्तए । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ भवियदव्वदेवा भवियदव्वदेवा ।

(३)से केणट्ठेणं एवं वुच्चइ णरदेवा णरदेवा ? गोयमा ! जे इमे रायाणो चाउरंतचक्कवट्टी उप्पण्ण समत्तचक्क-रयणप्पहाणा णवणिहिपइणो समिद्धकोसा वत्तीसं रायवर-सहस्साणुयातमग्गा सागरवरमेहलाहिवइणो मणुस्सिंदा । से तेणट्ठेणं जाव णरदेवा णरदेवा ।

(४) केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ धम्मदेवा धम्मदेवा ? गोयमा ! जे इमे अणगारा भगवंतो ईरियासमिया जाव गुत्तवंभयारी । से तेणट्ठेणं जाव धम्मदेवा धम्मदेवा ।

(५)से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ देवाहिदेवा देवाहिदेवा ? गोयमा ! जे इमे अरिहंता भगवंतो उप्पण्णणाण दंसणधरा जाव सव्वदरिसी । से तेणट्ठेण जाव देवाहिदेवा देवाहिदेवा ।

(६)से केणट्ठेण भंते ! एवं वुच्चइ भावदेवा भावदेवा ? गोयमा ! जे इमे भवणवइवाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया देवा देवगइणामगोयाइ कम्माइ वेदेंति । से तेणट्ठेण जाव भावदेवा भावदेवा ।

—भगवतीसूत्र श० १२।६

अर्थ-(१) श्री गौतम स्वामी श्रमण भगवान् महावीर स्वामी से पूछते हैं कि हे भगवन् ! देव कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर-श्रमण भगवान् महावीर स्वामी फरमाते हैं कि हे गौतम ! देव पाँच प्रकार के कहे गये हैं। वे इस प्रकार हैं-१ भव्य द्रव्यदेव, २ नरदेव, ३ धर्मदेव, ४ देवाधिदेव और ५ भावदेव।

(२) प्रश्न—हे भगवन् ! भव्य द्रव्य देव किसे कहते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! जो आगामी भव में देव रूप से उत्पन्न होंगे, उन तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रियों का और मनुष्यों को भव्यद्रव्य देव कहते हैं।

(३) प्रश्न—हे भगवन् ! नरदेव किसे कहते हैं ?

उत्तर-हे गौतम ! समस्त रत्नों में प्रधान चक्ररत्न तथा नवनिधि के स्वामी, समृद्ध कोश वाले, बत्तीस हजार राजाओं से अनुगत, पूर्व, पश्चिम और दक्षिण में समुद्र पर्यन्त और उत्तर दिशा में

हिमवान् पर्वत पर्यन्त छह खण्ड पृथ्वी के स्वामी, मनुष्यों में इन्द्र के समान चक्रवर्ती को नरदेव कहते हैं।

(४) प्रश्न—भगवन धर्मदेव किसको कहते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! श्रुत चारित्र रूप प्रधान धर्म के आराधक, ईर्यासमिति आदि से समन्वित यावत गुप्त ब्रह्मचारी अनगारसाधु महात्माओं को धर्म देव कहते हैं।

(५) प्रश्न—अहो भगवन् देवाधिदेव किसको कहते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! देवों से भी बढ़ कर अतिशय वाले अत एव देवों के भी आराध्य, उत्पन्न केवलज्ञान केवलदर्शन के धारक अरिहन्त भगवन् को देवाधिदेव कहते हैं।

(६) प्रश्न—भगवन् ! भावदेव किसको कहते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! देव गति, नाम, गोत्र आयु आदि कर्म के उदय से देवभव को धारण किये हुए भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव को भावदेव कहते हैं।

५—जन्म-महिमा
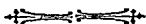
तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म महोत्सव (जन्म कल्याणक) का विस्तृत वर्णन या है —

जया ण एक्कमेक्के चक्कवट्टिविजए भगवंतो अरहंता समुप्पज्जंति तेण कालेण तेण समएण अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठदिसा कुमारियाओ महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं सएहिं सएहिं भवणेहिं सएहिं सएहिं पासायवडिंसएहिं पत्तेयं पत्तेय चउहि सामाणियसाहस्सीहिं चउहि महत्तरियाहिं सपरिवाराहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहि सोलसएहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहि अण्णेहिं य बहूहिं भवणवइ वाणमंतरेहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडाओ महया हयणट्टगीयवाइय जाव भोयाइं भुंजमाणीओ विहरंति तंजहा—

भोगंकरा भोगवई, सुभोगा भोगमालिणी ।
तोयधारा विचित्ता य, पुप्फमाला अणिंदिया ॥१॥

तए णं तासिं अहोलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीणं महत्तरियाणं पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलंति । तए णं ताओ

अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारियाओ महत्तरियाओ पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलियाइं पासंति, पासित्ता ओहिं पउंजंति पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएंति, आभोइत्ता अण्णमण्णं सद्दाविंति, सद्दावित्ता एवं वयासी–उप्पण्णे खलु भो ! जंबूद्दीवे दीवे भगवं तित्थयरे, तं जीयमेयं तीयपच्चुप्पण्णमणागयाणं अहोलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारीमहत्तरियाणं भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करित्तए, तं गच्छामो णं अम्हे वि भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहियं करेमो त्तिकट्टु एवं वयंति, वइत्ता, पत्तेयं पत्तेयं आभिओगिए देवे सद्दाविंति, सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अणेग–खंभसयसण्णिविट्ठं लीलट्ठियं एवं विमाणवण्णओ भणियव्वो, जाव जोयण विच्छिण्णे दिव्वे जाणविमाणे विउव्वह, विउव्वित्ता एणमाणत्तियं पच्चप्पिणह त्ति। तए णं ते आभिओगा देवा अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं जाव पच्चप्पिणंति। तए णं ताओ अहोलोगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी–महत्तरियाओ हट्ठतुट्ठाओ पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणिय–साहस्सीहिं चउहिं महत्तरियाहिं अण्णेहिं जाव बहूहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडाओ ते दिव्वे जाण विमाणे दुरूहंति, दुरूहित्ता सव्विड्ढिए सव्वजुईए घण-मुइंग-पवण--वाइयरवेणं ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए, जेणेव भगवओ

तित्थयरस्स जम्मणणयरे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स भवणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता, भगवओ तित्थयरस्स जम्मण भवण तेहि दिव्वेहिं जाण विमाणेहि तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिण करेंति, करित्ता उत्तरपुरच्छिमे दिगिभाए ईसिं चउरगुलमसपत्ते धरणीयले ते दिव्वे जाणविमाणे ठविंति, ठवित्ता पत्तेयं पत्तेय चउहि सामाणियसाहस्सीहिं जाव सद्धिं संपरिवुडाओ दिव्वेहितो जाणविमाणेहिंतो पचोरूहति, पचोरूहित्ता सव्विड्ढीए जाव णाइएण जेणेव भगव तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता भगव तित्थयर तित्थयर-मायर च तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेंति, करित्ता पत्तेय पत्तेय करयलपरिग्गहीय सिरसावत्त मत्थए अजलि कट्टु एव वयासी--णमोत्थुण ते रयणकुच्छिधारियाए जगप्पईवदाईए सव्वजगमंगलस्स चक्खुणो य मुत्तस्स सव्वजग-जीववच्छलस्स हियकारगमग्गदेसियवागिड्ढीविभुपभुस्स जिणस्स णाणिस्स णायगस्स बुहस्स बोहगस्स, सव्व-लोगणाहस्स, णिम्ममस्स, पवरकुलसमुब्भवस्स, जाईए खत्तियस्स, जसि लोगुत्तमस्स जणणी धण्णासि त, पुण्णासि कयत्थासि, अम्हे ण देवाणुप्पिए! अहोलोग-वत्थव्वाओ अट्ठ--दिसा कुमारी--महत्तरियाओ भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-महिम करिस्सामो, तण्ण तुब्भेहि ण

भीइयव्वं तिकट्टु उत्तरपुरच्छिमं दिसिभागं अवक्कमंति अवक्कमित्ता वेउव्विय-समुग्घाएणं सम्मोहणंति, सम्मोहणिता संखिज्जाइं जोयणाइं दंडं णिस्सरंति तंजहा-रयणाणं जाव संवट्टगवाए विउव्वंति, विउव्वित्ता तेणं सिवेणं मउएणं मारुएणं अणुद्धुएणं भूमितल-विमलकरणेणं मणहरेणं सव्वोउयसुरहि–कुसुम–गंधाणुवासिएणं पिंडिमणिहारिमेणं गंधुद्धुएणं तिरियं पवाइएणं भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-भवणस्स सव्वओ समंता जोयणपरिमंडलं से जहा णामए कम्मगरदारए सिया जाव तहेव जं तत्थ तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा कयवरं वा असुइमचोक्खं पूइयं दुब्भिगंधं तं सव्वं आहुणिय आहुणिय एगंते एडिंति, एडित्ता जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य अदूरसामंते आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥ १ ॥

अर्थ—जिस समय महाविदेह क्षेत्र के एक एक चक्रवर्ती विजय मे और भरत तथा ऐरवत क्षेत्र मे तीर्थङ्कर भगवान् उत्पन्न होते है उस समय उनका जन्म महोत्सव किया जाता है। उसका वर्णन इस प्रकार है—

अधोलोक में अर्थात् इस समतल भूमिभाग पर रहे हुए चार गजदन्ताकार पर्वतों से नव सौ योजन नीचे रहने वाली महत्तरिका अर्थात् अपनी जाति मे प्रधान आठ दिशाकुमारियाँ अर्थात् दिशा-कुमार जाति की देवियाँ अपने अपने कूटों से, भवनों में, प्रासादा-

वतसकों में अर्थात् क्रीड़ा करने के स्थानों में चार २ हजार सामानिक देवों के साथ अपने परिवार सहित चार महत्तरिका कुमारियों के साथ सात अनीक और सात अनीकाधिपति देवों के साथ और दूसरे बहुत से भवनपति और वाणव्यन्तर देव और देवियों के साथ सपरिवृत (घिरी हुई) नाच गान और वादित्रों सहित भोग भोगती हुई विचरती हैं उन आठ दिशाकुमारियों के नाम इस प्रकार हैं—१ भोगकरी, २ भागवती, ३ सुभोगा, ४ भागमालिनी ५ तोयधारा, ६ विचित्रा, ७ पुष्पमाला और अनिन्दिता।

जब तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म होता है उस समय उन अधोलोक में रहने वाली आठ दिशाकुमारियों के आसन चलित होते हैं। तब वे अवधिज्ञान द्वारा देखती हैं। देख कर वे परस्पर एक दूसरी को बुलाती हैं और इस प्रकार कहती हैं कि–हे देवानुप्रियाओ ! सब द्वीप समुद्रों के मध्यवर्ती इस जम्बूद्वीप में तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ है। तीर्थङ्कर भगवान का जन्म महोत्सव करना हमारा जीतकल्प है अर्थात् परम्परागत आचारव्यवहार है। अतः हमारे लिए यह उचित है कि हम तिर्च्छालोक में जाकर तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करें। इस प्रकार परस्पर विचार कर वे अपने अपने आभियोगिक देवों को बुलाकर उनसे कहती हैं कि–हे देवानुप्रियो ! अनेक स्तम्भों वाले और लीलासहित शाल भञ्जिका-पुतलियों सहित एक योजन चौड़े विमान की विकुर्वणा करो और यह कार्य करके हमें वापिस इसकी सूचना दो। तब वे आभियोगिक देव विमान तैयार करके उनको वापिस सूचना देते हैं। तब वे दिशाकुमारियाँ हृष्ट तुष्ट होकर अपने उपरोक्त समस्त परिवार के साथ तथा अपनी समस्त ऋद्धि और द्युति के साथ उन विमानों में बैठती हैं और मृदङ्ग शुषिर आदि वादित्रों के साथ तीर्थङ्कर भगवान् के जन्मनगर में आती हैं और तीर्थङ्कर भगवान्

के महल के चारों तरफ तीन वार प्रदक्षिणा देती हैं। फिर ईशान कोण में जाकर भूमि से चार अङ्गुल ऊपर अपने विमानों को रख देती हैं। तत्पश्चात् वे दिशाकुमारियाँ उन विमानों से नीचे उतर कर अपने समस्त परिवार के साथ तीर्थङ्कर भगवान् और तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आकर तीन वार प्रदक्षिणा करके दोनों हाथ जोड़ कर मस्तक से आवर्तन करती हुई अञ्जलिसहित इस प्रकार कहती है कि हे रत्नकुक्षिधारिके! अर्थात् भगवान् रूप रत्न को अपनी कुक्षि में धारण करने वाली और जगत्प्रदीपजन्मदायी! अर्थात् समस्त जगत् को प्रकाशित करने वाले प्रदीप के समान भगवान् को जन्म देने वाली! क्योंकि समस्त संसार का मंगल करने वाले, संसार के लिए चक्षुरूप, समस्त प्राणियों के हितकारी, मोक्ष मार्ग को बतलाने वाले, समस्त श्रोताजनों के हृदय में वस्तु-तत्त्व को प्रकाशित करने वाली वाणी का कथन करने वाले राग द्वेष को जीतने वाले, विशिष्ट ज्ञान के धारक, धर्म चक्र को प्रवर्तान वाले समस्त पदार्थों के ज्ञाता, समस्त प्राणियों को धर्म तत्त्व का बोध देने वाले, सम्पूर्ण लोक के नाथ, ममत्वरहित, श्रेष्ठ कुल में उत्पन्न होने वाले एवं जाति से क्षत्रियकुल में जन्म लेने वाले लोकोत्तम पुरुष की आप माता है। अतः आप धन्य है, आप पुण्यवती है, आप कृतार्थ है। हे देवानुप्रिये! हम अधोलोक में रहने वाली आठ दिशाकुमारियाँ है। हम तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करेंगी। अतः आप डरें नहीं। इस प्रकार कह कर वे ईशान कोण में जाकर वैक्रिय समुद्घात करती है यावत् रत्नों के सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण करके संख्यात योजन का दण्ड बनाती है और संवर्तक वायु की विकुर्वणा करके मृदु, ऊपर को न जाने वाली किन्तु पृथ्वी तल को स्पर्श करने वाली, सब ऋतुओं के फूलों की सुगन्धि से युक्त, तिर्छी चलने वाली वायु से तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म

भवन के चारों तरफ एक योजन तक जमीन को साफ करती हैं। उसमें जो कुछ तृण पत्र, काष्ठ कचरा, अशुचि तथा सड़े हुए और दुगन्धि युक्त पदार्थ होते हैं उन्हें ले जाकर एकान्त स्थान में डाल देती हैं। फिर वे तीर्थङ्कर भगवान् और उनकी माता के पास आती हैं। और उनके पास उचित स्थान पर मधुर स्वर में गाती हुई खड़ी रहती हैं। १॥

(दिशाकुमारियों का आगमन)

तेणं कालेणं तेणं समएणं उड्ढलोगवत्थव्वाओ अट्ठ-दिसाकुमारी-महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं, सएहिं सएहिं भवणेहिं, सएहिं सएहिं पासायवडिंसएहिं पत्तेयं पत्तेयं चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं, एवं तं चेव पुव्ववणिणय जाव विहरंति तंजहा-मेहंकरा मेहवई, सुमेहा मेहमालिणी। सुवच्छा वच्छमित्ता य वारिसेणा बलाहगा॥

तएणं तासिं उड्ढलोगवत्थव्वाणं अट्ठण्हं दिसाकुमारी-महत्तरियाणं पत्तेयं पत्तेयं आसणाइं चलंति। एवं तं चेव पुव्ववणिणय भणियव्वं जाव अम्हे णं देवाणुप्पिए! उड्ढलोग-वत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी-महत्तरियाओ भगवओ तित्थयरस्स जम्मण-महिमं करिस्सामो तेणं तुब्भं ण भीइयव्वं त्तिकट्टु उत्तरपुरच्छिमं दिसिभागं अवक्कमंति अवक्कमित्ता जाव अब्भवद्दलए विउव्वंति विउव्वित्ता जाव तं णिहयरयं णट्ठरयं भट्ठरयं पसंतरयं उवसंतरयं

करेंति, करित्ता खिप्पामेव पच्चुवसमंति, एवं पुप्फवद्दलंसि पुप्फवासं वासंति वासित्ता जाव कालागुरुपवर जाव सुर-वराभिगमणजोग्गं करेंति, करित्ता जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता जाव आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥२॥

अर्थ—उस काल उस समय मे ऊर्ध्वलोक मे रहने वाली आठ दिशाकुमारियाँ पूर्व वर्णन के अनुसार दिव्य भोग भोगती हुई, अपने-अपने महलो मे रहती है। उनके नाम इस प्रकार है—१ मेघंकरा, २ मेघवती, ३ सुमेघा, ४ मेघमालिनी, ५ सुवत्सा, ६ वत्समित्रा, ७ वारिषेणा, और ८ बलाहका।

जब तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म होता है, तब इन दिशा-कुमारियो के आसन कम्पित होते है। फिर वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जानती है। इत्यादि पूर्व वर्णन सारा यहाँ भी कर देना चाहिए। फिर वे तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आकर कहती है कि हे देवानुप्रिये! ऊर्ध्वलोक मे रहने वाली हम आठ दिशाकुमारियाँ तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म-महोत्सव करेंगी। इससे आप डरें नहीं। ऐसा कह कर वे ईशान कोण मे जाकर मेघ की विकुर्वणा करती हैं; फिर उनसे पानी बरसा कर तीर्थङ्कर भगवान् के जन्मस्थान से एक योजन तक समस्त रज को शान्त कर देती है, फिर वे पाँच जाति के फूलों की वृष्टि करती है। तत्पश्चात् कालागुरु, कुंदरुक्क आदि धूपों से एक योजन तक की भूमि को अत्यन्त सुगन्धित गन्धवट्टी के समान बना देती है यावत् उस भूमि को देवलोक के इन्द्र और देवो के आने योग्य बना

देता हैं। फिर तार्थङ्कर भगवान् की माता के पास आकर मधुर स्वर से गाती हुई खड़ी रहती हैं ॥२॥

तेण कालेण तेणं समएणं पुरच्छिमरुयगवत्थव्वाओ अट्ठ दिसाकुमारी-महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं तहेव जाव विहरंति, तजहा—

णदुत्तरा य णदा य, आणदा णदिवद्धणा।
विजया य वेजयंती, जयंती अपराजिया ॥

सेस त चेव जाव तुब्भेहिं ण भीइयव्व त्तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य पुरच्छिमेणं आयंस-हत्थगयाओ आगायेमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठति ॥३॥

अर्थ—पूर्व रुचक कूट पर रहने वाली आठ दिशाकुमारी देवियाँ अपने अपने महलों में दिव्य भोग भोगती हुईं आनन्द पूर्वक रहती हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ नन्दुत्तरा, २ नन्दा, ३ आनन्दा, ४ नन्दिवर्द्धना, ५ विजया, ६ वैजयन्ती, ७ जयन्ती और ८ अपराजिता।

जब तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म होता है, तब इनके आसन चलित होते हैं। फिर वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर अपनी सर्व ऋद्धि और द्युति के साथ एवं अपने समस्त परिवार के साथ तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आकर इस प्रकार कहती हैं—हे देवानुप्रिये! हम पूर्व के रुचक कूट पर रहने वाली आठ दिशाकुमारी देवियाँ हैं। हम तीर्थङ्कर भगवान का जन्म महोत्सव करेंगी। इससे आप डरें नहीं। ऐसा

मायाए य उत्तरेणं चामरहत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥६॥

अर्थ—उत्तरदिशा के रुचक पर्वत पर रहने वाली आठ दिशाकुमारी देवियाँ अपने-अपने महलों में दिव्य भोग भोगती हुई रहती है। उनके नाम इस प्रकार है—१ अलंबुसा, २ मिश्रकेशी, ३ पुण्डरीका, ४ वारुणी, ५ हासा, ६ सर्वप्रभा, ७ श्री और ८ ह्री।

तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म समय मे अपने अपने आसनों के कम्पित होने पर वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर उनका जन्म महोत्सव करने के लिए तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आती है और उन्हे वन्दना नमस्कार करके हाथ मे चामर लेकर यथाक्रम से गीत गाती हुई उत्तर की तरफ खड़ी रहती है ॥६॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं विदिसरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी–महत्तरियाओ जाव विहरंति। तंजहा—

चित्ता य चित्तकणगा, सतेरा य सोदामिणी।

तहेव जाव तुब्भेहिं ण भीइयव्वं त्तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमायाए य चउसु विदिसासु दीविया-हत्थगयाओ आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥७॥

अर्थ—उस काल और उसी समय मे १ चित्रा, २ चित्र-कनका, ३ शतेरा और ४ सौदामिनी। ये चार महत्तरिका विदिशा-कुमारी देविया (विद्युत्कुमारी देवियाँ) रुचक पर्वत के ऊपर ईशानकोण, आग्नेय कोण, नैऋत्य कोण और वायव्य कोण

इन चार विदिशाओं मे रहती हैं। अपने अपने आसन कम्पित होने पर ये अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जानकर उनका जन्म महोत्सव करने के लिए तीथङ्कर भगवान् की माता के पास आती हैं और उन्हें वन्दना नमस्कार करके हाथ मे दीपक लेकर यथाक्रम मन्द और उच्चस्वर से गाती हुई चारो विदिशाओं में खडी हो जाती हैं ॥७॥

तेण कालेण तेण समएण मज्झिमरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरियाओ सएहिं सएहिं कूडेहिं तहेव जाव विहरंति। तजहा—रूआ, रूआसिया, सुरूआ, रूअगावई। तहेव जाव तुब्भेहिं ण भीइयव्वं त्तिकट्टु भगवओ तित्थयरस्स चउरंगुलवज्जं णाभिणालं कप्पंति, कप्पित्ता विअरगं खणंति, खणित्ता विअरगे णाभिणालं णिहणंति, णिहणित्ता रयणाण य वइराण य पूरेंति, पूरित्ता हरिआलियाए पेढं बधंति, बधित्ता तिदिसिं तओ कयलीहरए विउव्वंति। तए ण तेसिं कयलीहरगाणं बहुमज्झदेसभाए तओ चउस्सालए विउव्वंति। तए ण तेसिं चउस्सालगाण बहुमज्झदेसभाए तओ सीहासणे विउव्वंति। तेसिं सीहासणाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते। सव्वो वण्णओ भणियव्वो।

तएण ताओ मज्झिमरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरियाओ जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं करयल-

संपुडेणं गिण्हंति, तित्थयर मायरं च बाहोहिं गिण्हंति गिण्हित्ता जेणेव दाहिणिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति, णिसीयावित्ता सयपागसहस्सपागेहिं तिल्लेहिं अब्भंगेंति, अब्भंगित्ता सुरभिणा गंधवट्टएणं उव्वट्टेंति, उव्वट्टित्ता भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव पुरच्छिमिल्ले कयली-हरए जेणेव चाउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति, णिसीयावित्ता तिहिं उदएहिं मज्जावेंति तंजहा—गंधोदएणं पुप्फोदएणं सुद्धोदएणं। मज्जावित्ता सव्वालंकारविभूसियं करेंति, करित्ता भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं तित्थयरमायरं च बाहाहिं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव उत्तरिल्ले कयलीहरए जेणेव चाउस्सालए जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भगवं तित्थ-यरं तित्थयरमायरं च सीहासणे णिसीयावेंति, णिसीया-वित्ता आभिओगे देवे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चुल्लहिमवंताओ वासहर-पव्वयाओ गोसीसचंदणकट्ठाइं साहरह। तएणं ते आभि-ओगा देवा ताहिं मज्झिमरुयगवत्थव्वाहिं चउहिं दिसा-

कुमारी महत्तरियाहिं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा जाव विणएण वयण पडिच्छति, पडिच्छित्ता खिप्पामेव चुल्लहिमवंताओ वासहरपव्वयाओ सरसाइ गोसीसचंदण-कट्ठाइं साहरति ।

तएण ताओ मज्झिमरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसा-कुमारी महत्तरियाओ सरग करेंति, करित्ता अरणिं घडेंति, अरणिं घटित्ता, सरएण अरणिं महिंति, महित्ता अग्गिं पाडेंति, पाडित्ता अग्गिं सधुक्खति, सधुक्खित्ता गोसीस-चदणकट्ठे पक्खिवंति, पक्खिवित्ता अग्गिं उज्जालेंति, उज्जालित्ता समिहाकट्ठाइ पक्खिवेंति, पक्खिवित्ता अग्गि-होम करेंति, करित्ता भूइकम्म करेंति, करित्ता रक्खापोट्ट-लिय बघति, बंधित्ता णाणामणिरयणभत्तिचित्ते दुवे पाहाणवट्टगे गहाय भगवओ तित्थयरस्स कण्णमूलम्मि टिट्टियावेंति–भवउ भगव पव्वयाउए, भवउ भगव पव्व-याउए। तएण ताओ मज्झिमरुयगवत्थव्वाओ चत्तारि दिसाकुमारी महत्तरियाओ भयव तित्थयर करयलपुडेण तित्थयरमायर च बाहाहि गिण्हति गिण्हित्ता जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणे तेणेव उवागच्छति उवागच्छित्ता तित्थयरमायर सयणिज्जसि णिसीयावेंति, णिसीयावित्ता भगव तित्थयर माउए पासे ठवेंति, ठवित्ता आगायमाणीओ परिगायमाणीओ चिट्ठंति ॥८॥

अर्थ—रूपा, रूपासिका, सुरूपा, और रूपकावती, ये मध्यम रुचक पर्वत पर रहने वाली चार दिशाकुमारियाँ तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म समय मे अपने अपने आसनो के कम्पित हाने पर अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर उनका जन्म महोत्सव करने के लिए तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आती है और कहती है कि 'हम तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करेगी, इससे आप डरे नही।' ऐसा कह कर तीर्थङ्कर भगवान के नाभिनाल का चार अङ्गुल छोड़ कर छेदन करती है, फिर उसे खड्डे मे गाड़ती है और रत्ना से तथा वज्ररत्नों से उस खड्डे को भर देती है तथा उस पर हरितालिका को पीठ बाँध देती है अर्थात् घास उगा देती है। फिर पूर्व, उत्तर और दक्षिण दिशा मे तीन कदलीगृह (केले के घर) बनाती है। और उनके बीच मे तीन चौशाल भवन बना कर उनके बीच मे तीन सिंहासन बनाती है। सिंहासन का वर्णन जैसा रायप्रश्नीय सूत्र मे बताया गया है वैसा यहाँ पर भी कह देना चाहिए।

तत्पश्चात वे दिशाकुमारी देवियाँ तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास आती है तीर्थङ्कर भगवान् को हथेली मे रख कर तथा तीर्थङ्कर भगवान् की माता को भुजाओ से पकड़ कर दक्षिण दिशा के कदलीगृह के चौशाल भवन मे आती हैं और सिंहासन पर बैठाती है। फिर शतपाक और सहस्रपाक तैलो से उनके शरीर का मर्दन करती हैं फिर महासुगन्धित गन्धद्रव्यों के उबटन से उनके उबटन करती है। वहाँ से उन दोनों को पूर्व दिशा के कदलीगृह के चौशाल भवन मे पूर्ववत लाकर सिंहासन पर बैठाती है और गन्धोदक, पुष्पोदक एवं शुद्धोदक इन तीन प्रकार के पानी से उन्हे स्नान कराती है। तत्पश्चात् उन दोनों को उत्तर दिशा के कदलीगृह के चौशाल भवन मे पूर्ववत् लाकर सिंहासन पर बैठा कर

स्नान कराती हैं। फिर वे दिशाकुमारी देवियाँ अपने आभियोगिक (नौकर तुल्य) देवों को बुला कर कहती हैं कि हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र ही चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत पर जाकर वहाँ से श्रेष्ठ गोशीर्ष चन्दन काष्ठ लाओ। तब वे आभियोगिक देव उनकी आज्ञा को प्रसन्नता से स्वीकार करते हैं और शीघ्र ही चुल्लहिमवान् वर्षधर पर्वत पर जाकर गोशीर्ष चन्दन काष्ठ लाते हैं। फिर वे देवियाँ अरणि की लकडी से अग्नि पैदा करके उसमें गोशीर्ष चन्दन काष्ठ डाल कर अग्नि होम करती हैं। उन चन्दनकाष्ठों की भस्म बना कर रक्षा पोट्टलिका अर्थात् अनिष्टों से रक्षा करने वाली पोटली बाँधती हैं। तत्पश्चात् अनेक मणिरत्नों की रचना से विचित्र गोल पाषाण लेकर तीर्थङ्कर भगवान के कान के पास में उन्हें बजाती है यानी "टा-टा" शब्द करवाती हैं और आशीर्वाद देती हैं कि तीर्थङ्कर भगवान पर्वत के समान दीर्घ आयु वाले होवें। फिर वे देवियाँ तीर्थङ्कर भगवान को हथेली पर रख कर और उनकी माता को भुजाओं से ग्रहण करके तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन में लाती हैं। वहाँ तीर्थङ्कर भगवान् की माता को उनके बिछौने पर सुला कर तीर्थङ्कर भगवान् को उनके पास सुला देती हैं फिर वे मधुर गीत गाती हुई खडी रहती हैं॥८॥

(देवेन्द्र द्वारा वन्दन)

तेण कालेण तेण समएण सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे सयक्कऊ सहस्सक्खे मघव पागसासणे दाहिणड्ढलोगाहिवई बत्तीसविमाणावाससयसहस्साहिवई एरावणवाहणे सुरिंदे अरयम्बरवत्थधरे आलइयमालमउडे नवहेम-

चारुचित्तचंचलकुंडलविलिहिज्जमाणगंडे भासुरबोंदी पलंब-वणमाले महिड्ढीए महज्जुईए महब्बले महायसे महाणु-भागे महासोक्खे सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कंसि सीहासणंसि से णं तत्थ बत्तीसाए विमाणावाससयसाहस्सीणं चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं तेत्तीसाए तायतीसगाणं चउण्हं लोगपालाणं अट्ठण्हं अग्ग-महिसीणं सपरिवाराणं तिण्हं परिसाणं सत्तण्हं अणियाणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं चउण्हं चउरासीणं आयरक्खदेव-साहस्सीणं अण्णेसिं य बहूणं सोहम्मकप्पवासीणं वेमाणि-याणं देवाणं य देवीणं य आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहयणट्टगीयवाइयतंतीतलताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडु-पडहवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे विहरइ।

तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो आसणं चलइ। तए णं से सक्के जाव आसणं चलियं पासइ, पासित्ता ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता भगवं तित्थयरं ओहिणा आभोएइ, आभोइत्ता हट्ठतुट्ठचित्ते आणंदिए पीइमाणे परम-सोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए धाराहयकयंब-कुसुम-चंचुमालइय ऊसवियरोमकूवे वियसिय-वरकमल-णयणवयणे पचलियवरकडग-तुडिय-केऊर-मउडे कुंडलहार-विरायंतवच्छे पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं

तुरिय चवल सुरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पचोरुहइ, पचोरुहित्ता वेरुलियवरिट्ठरिट्ठ-अजणणिउणोविय मिमिमिसंत मणिरयणमडियाओ पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडिय उत्तरासग करेइ, करित्ता अजलिमउलियग्गहत्थे तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठ-पयाइ अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वाम जाणु अचेइ, अचित्ता दाहिण जाणु धरणीयलसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाण धरणीयलसि णिवेसेइ, णिवेसित्ता ईसिं पच्चुण्ण-मइ, पच्चुण्णमित्ता कडगतुडियथंभियाओ भुयाओ साह-रइ, साहरित्ता करयलपरिग्गहिय सिरसावत्त मत्थए अज लिं कट्टु एव वयासी—णमोत्थुण अरिहताण भगवताणं, आइगराण तित्थयराण सयसबुद्धाण पुरिसुत्तमाण पुरिस-सीहाण पुरिसवरपुडरियाण पुरिसवरगधहत्थीण, लोगुत्त-माण लोगणाहाण लोगहियाण, लोगपईवाण, लोगपज्जोय-गराण, अभयदयाण, चक्खुदयाण, मग्गदयाण, सरणदयाण, जीवदयाण, बोहिदयाण, धम्मदयाण, धम्मदेसयाण, धम्म-णायगाणं, धम्मसारहीण, धम्मवरचाउरतचक्कवट्टीण, दीवो-ताण सरण गई पइट्ठा अप्पडिहयवरणाणदसणधराण वियट्ट-छउमाण, जिणाण जावयाण तिण्णाण तारयाण बुद्धाण बोहियाण मुत्ताण मोयगाण, सव्वण्णूण सव्वदरिसीण सिव-मयलमरुयमणतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्ति सिद्धिगइ

णामधेयं ठाणं संपत्ताणं णमो जिणाणं जिअभयाणं, णमो-त्थुणं भगवओ तित्थयरस्स आइगरस्स जाव संपाविउ-कामस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं तिकट्टु वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमं-सित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ॥६॥

अर्थ—तीर्थङ्कर भगवान के जन्म के समय में जब छप्पन दिशाकुमारी देवियाँ अपना अपना कार्य कर चुकती है, तब देवों के राजा हाथ मे वज्र धारण करने वाले, पुर नामक दैत्य का विनाश करने वाले, कार्तिक सेठ के भव मे सौ बार श्रावक की प्रतिमा का आराधन करने वाले, अपने पॉच सौ मन्त्रियो की सलाह लेकर कार्य करने से हजार नेत्रो वाले, पाक नामक दैत्य को शिक्षा देने वाले, मेरु पर्वत से दक्षिण दिशा के अर्द्ध लोक के अधिपति, सौधर्म देवलोक सम्बन्धी बत्तीस लाख विमानों के अधिपति ऐरावत हाथी की सवारी करने वाले, आकाश के समान स्वच्छ निर्मल वस्त्रों के धारण करने वाले, गले मे माला और मस्तक पर मुकुट धारण करने वाले, नवीन एवं मनोहर चंचल कुंडलों को धारण करने वाले प्रकाशमान शरीर वाले, लटकती हुई माला को धारण करने वाले, महाऋद्धिमान, महाद्युतिमान्, महाबलवान्, महायशस्वी, महा-नुभाव, महासुखी शक्र नाम के देवेन्द्र सौधर्मावतंसक विमान में सुधर्मा सभा मे अपने सिंहासन पर विराजमान है। वे वहाँ पर बत्तीस लाख विमान, चौरासी हजार सामानिक देव, तेतीस त्राय-स्त्रिंशक देव, चार लोक पाल, परिवार सहित आठ अग्रमहिषियाँ, तीन परिषदा, सात अनीक (सेना), सात अनीकाधिपति. तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देव और दूसरे बहुत से सौधर्म

देवलोक में रहने वाले वैमानिक देव और देवियों का अधिपतिपना, स्वामीपना, अग्रगामीपना, और सेनापतिपना करते हुए अनेक वादित्रों सहित गीत और नृत्यपूर्वक भोग भोगते हुए रहते हैं।

जब तीर्थंकर भगवान् का जन्म होता है तब इनका आसन चलायमान होता है। अपने आसन को चलित देखकर वे अवधि ज्ञान का प्रयोग करते हैं। फिर अवधिज्ञान के द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जानकर वे बड़े प्रसन्न होते हैं, आनन्दित होते हैं, हर्षवश उनका हृदय कमल विकसित हो जाता है, जलधारा के पड़ने से कदम्ब वृक्ष के फूल के समान उनकी समस्त रोमराजि (रोंगटे) विकसित हो जाती है, उनके नेत्र और मुख श्रेष्ठ कमल के समान विकसायमान हो जाते हैं यावत् उन्हें अपार हर्ष होता है। तब शक्रेन्द्र अपने सिंहासन से नीचे उतर कर विविध प्रकार के मणिरत्नों से जड़ित अपनी पादुका (खड़ाऊ) को खोल देता है और मुख पर वस्त्र का उत्तरासंग करके, मस्तक पर अञ्जलि करके और तीर्थंकर भगवान् की तरफ मुँह करके सात-आठ पैर उनके सामने जाते हैं। फिर बाएँ गोडे को खड़ा करके और दाहिने गोड़े को जमीन पर टेक कर शरीर को थोड़ा सकुचित करके एव भुजाओं को थोडी-सी पीछे खींचकर तीन बार भूमि पर मस्तक नमाते हैं। दोनों हाथ जोड़कर मस्तक पर आवर्तन करके इस प्रकार बोलते हैं—"अरिहन्त भगवान् को नमस्कार हो" वे अरिहन्त भगवान् कैसे हैं? धर्म की आदि (शुरुआत) करने वाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले, स्वयमेव बोध को प्राप्त करने वाले, पुरुषों में उत्तम, पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में प्रधान पुण्डरीक कमल के समान, पुरुषों में प्रधान गन्धहस्ती के समान, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक के हितकारी, लोक में प्रदीप के समान, लोक में धर्म का उद्योत करने वाले, अभयदान के दाता,

ज्ञान रूप चक्षु के दाता, मोक्षमार्ग के दाता, भयभीत प्राणियों को शरण देने वाले, संयम रूप जीवितव्य के देने वाले. बोधबीज रूप समकित के देने वाले, धर्म के देने वाले, धर्मोपदेश के देने वाले, धर्म के नायक, धर्म रूप रथ के सारथि, धर्म में प्रधान, चारगति का अन्त करने में चक्रवर्ती के समान, शरणागत को आधारभूत, केवल ज्ञान केवल दर्शन के धारण करने वाले, छद्मस्थपने से निवृत्त, स्वयं रागद्वेष को जीतने वाले, दूसरों को रागद्वेष जिताने वाले, स्वयं संसार समुद्र को तिरने वाले, दूसरों को संसार समुद्र से तिराने वाले, स्वयं तत्त्वज्ञान को प्राप्त करने वाले, दूसरों को तत्त्वज्ञान प्राप्त कराने वाले, स्वयं आठ कर्मों से मुक्त होने वाले, दूसरों को आठ कर्मों से मुक्त कराने वाले. सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, कल्याणकारी, शाश्वत, रोगरहित, अनन्त, अक्षय, बाधा पीड़ा रहित, पुनरागमन रहित, सिद्धिगति को प्राप्त करने वाले, संसार के सातों भयों को जीतने वाले, रागद्वेष के जीतने वाले, जिन भगवान् को नमस्कार हो। और धर्म की आदि करने वाले यावत् मोक्ष को प्राप्त करने की इच्छा वाले वर्तमान तीर्थङ्कर भगवान् को नमस्कार हो।

फिर शक्रेन्द्र कहते है कि इस समय जम्बूद्वीप में रहे हुए तीर्थङ्कर भगवान् को मै यहां से नमस्कार करता हूं। वहाँ रहे हुए तीर्थङ्कर भगवान् मुझे देखे और मेरी वन्दना स्वीकार करे। ऐसा कह कर शक्रेन्द्र वन्दना नमस्कार करते है वन्दना नमस्कार करके पूर्व की तरफ मुँह करके शक्रेन्द्र अपने आसन पर बैठ जाते है ॥६॥

(इन्द्र की घोषणा)

तए ण तस्प मक्कस्म देविंदस्म देवरण्णो अयमेवा-रूवे जाव सकप्पे समुप्पज्जित्था—उप्पण्णे खलु भो जबुद्दीवे दीवे भगव तित्थयरे तं जीयमेय तीयपच्चुप्पएणमणागयाण मक्काण देविंदाणं देवराईणं तित्थयराणं जम्मणमहिम करित्तए। त गच्छामि ण अह वि भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिम करेमि त्तिकट्टु एव सपेहेइ, सपेहित्ता हरिणे-गमेसिं पायत्ताणीयाधिवइ देव सद्दावेंति सद्दावित्ता एव वयासी खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सभाए सुहम्माए मेघोघरसिय गभीरमहुरयरसद्द जोयणपरिमडल सुघोम सुसर तिक्खुत्तो उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे महया महया सद्देण उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एव वयाहि—आणवेइ ण भो मक्के देविंदे देवराया, गच्छइ ण भो सक्के देविंदे देव-राया जबुद्दीवे दीवे भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिम करित्तए, त तुब्भे वि ण देवाणुप्पिया !, सव्विड्ढीए सव्व-जुईए सव्वबलेण सव्वसमुदएण सव्वायरेण सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसभमेण सव्वणाटएहिं सव्वोवरोहेहिं सव्वपुप्फ गधमल्लालंकारविभूसाए सव्व-दिव्व-तुडियसद्द-सणिणाएण महया इड्ढीए जाव रवेण णिययपरियालसंप-रिवुडा सयाइ सयाइ जाण विमाणवाहणाइ दुरुढा समाणा

अकाल परिहीणं चेव सक्कस्स जाव पाउब्भवह ॥१०॥

अर्थ—उस समय यानी अपने सिंहासन पर बैठने के पश्चात् शक्र देवेन्द्र देवराजा के मन में ऐसा विचार उत्पन्न होता है कि जम्बूद्वीप मे तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ है। तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करना यह भूत भविष्य और वर्तमान काल के शक्र देवेन्द्र देवराजाओं का जीताचार है यानी यह उनकी परम्परागत रीति है। अतः मैं भी जम्बूद्वीप मे जाऊँ और तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करूँ। ऐसा विचार करके शक्रेन्द्र पदाति सेना के स्वामी हरिणगमेषी देव को बुलाते हैं और बुला कर ऐसा कहते है कि हे देवानुप्रिय ! सुधर्मासभा में जाकर मेघ की गर्जना के समान गम्भीर और अतिमधुर शब्द करने वाला तथा जिसकी आवाज एक योजन तक फैलती है उस सुस्वर वाली सुघोष घण्टा को तीन वार वजा कर इस तरह उद्घोषणा करो कि हे देवानुप्रियो ! शक्र देवेन्द्र देवराजा आज्ञा देते हैं कि वे स्वयं तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करने के लिए जम्बूद्वीप मे जाते है। अतः तुम भी अपनी वस ऋद्धि, द्युति, कान्ति और विभूति सहित फूलमाला, गन्ध, अलङ्कार से विभूषित होकर सब नाटक और वादित्रों के शब्दों के साथ अपने अपने परिवार सहित यान विमानो पर बैठ कर शीघ्र ही शक्रेन्द्र के पास उपस्थित होवो ॥१०।

तए णं से हरिणेगमेसी देवे पाइत्ताणाहिवई सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ जाव एवं देवो त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरायस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्ख-

मित्ता जेणेव सभाए सुहम्माए मेघोघरसियगंभीरमहुरयर-सद्दा जोयणपरिमंडला सुघोसा घटा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मेघोघरसियगंभीरमहुरयरसद्द जोयणपरिमंडल सुघोस घंट तिक्खुत्तो उल्लालेइ । तए ण तीमे मेघोघ-रसियगंभीरमहुरयरसद्दाए जोयण परिमंडलाए सुघोसाए घंटाए तिक्खुत्तो उल्लालियाए समाणीए सोहम्मे कप्पे अण्णेहिं एगूणेहिं बत्तीसविमाणावासमयसहस्सेहिं अण्णाइ एगूणाइ बत्तीसघंटासयसहस्साइ जमगसमग कणकणारावं काउ पयत्ताइ हुत्था । तए ण सोहम्मे कप्पे पासायविमाण-णिक्खुडावडियसद्दसमुट्ठिय घंटा पडिसुया सयसहस्ससकुले जाए यावि होत्था ॥११॥

अर्थ—इसके बाद पदाति (पैदल) सेना का स्वामी वह हरिणगमेषी देव शक्रेन्द्र की उपरोक्त आज्ञा को सुन कर हृष्टतुष्ट होता है और विनयपूर्वक उस आज्ञा को स्वीकार करता है। तत्पश्चात् वह हरिणगमेषी देव सुधर्मा सभा में उस घटा के पास जाकर मेघ की गर्जना के समान गम्भीर और अति मधुर शब्द करने वाली तथा एक योजन तक शब्द विस्तृत करने वाली उस सुघोषा घण्टा को तीन बार बजाता है। उसको बजाने से सौधर्म देवलोक के दूसरे एक कम बत्तीस लाख विमानों में रही हुई एक कम बत्तीस लाख घण्टा एक साथ शब्द करती हैं। वह शब्द सौधर्म देवलोक के प्रासाद,विमान और गुफाओं में जाकर टकराता है जिससे उठी हुई प्रतिध्वनि के लाखों शब्दों से सम्पूर्ण सौधर्म देवलोक व्याप्त हो जाता है ॥११॥

तए णं तेसिं सोहम्मकप्पवासीणं बहूणं वेमाणियाणं देवाणं य देवीणं य एगंतरइपसत्तणिच्चपमत्तविसयसुहमुच्छिआणं सुसरघंटारसियविउलबोलतुरियचवलपडिबोहणे कए समाणे घोसणकोऊहलदिण्णकण्ण एगग्गचित्तउवउत्तमाणसाणं से पायत्ताणाहिवई देवे तंसि घंटारवंसि णिसंतपडिसंतंसि समाणंसि तत्थ तत्थ तहिं तहिं देसे महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वयासी—हंत ! सुणंतु भवंतो बहवे सोहम्मकप्पवासी वेमाणिया देवा य देवीओ य सोहम्मकप्पवइणो इणमो वयणं हियसुहत्थं, आणवेइ णं भो सक्के तं चेव जाव पाउब्भवह ॥ १२ ॥

अर्थ—सौधर्म देवलोक मे रहने वाले बहुत से देव और देवियाँ रति क्रीड़ा मे अत्यन्त आसक्त होते है और विषय सुख में अत्यन्त मूर्च्छित होते है। उस मधुर शब्द करने वाली सुघोषा घण्टा की आवाज से सावधान बन कर उद्घोषणा को सुनने के लिए अपने कान उधर लगाते है और चित्त को एकाग्र करके उधर ध्यान लगाते है। तब उस सुघोषा घण्टा की आवाज शान्त हो जाने पर पदाति सेना का अधिपति वह हरिणगमेषी देव बड़े जोर जोर से उद्घोषणा करता हुआ इस प्रकार कहता है कि—हे सौधर्म देवलोक में रहने वाले वैमानिक देव और देवियो ! आप सब लोग सौधर्म देवलोक के स्वामी शक्रेन्द्र के इन हितकारी एवं कल्याणकारी और सुखकारी वचनो को सुनो। शक्रेन्द्र यह आज्ञा देते हैं कि—मै तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करने के लिए

जम्बूद्वीप में जाता हूँ। अत तुम भी सभी लोग अपनी-अपनी सर्व ऋद्धि से युक्त होकर मेरे पास आओ ॥१२॥

तए ण ते देवा य देवीओ य एयमट्ठं सोचा हट्ठतुट्ठ जाव हियया अप्पेगइया वदणवत्तिय एव पूयणवत्तिय सक्कारवत्तिय सम्माणवत्तियं दसणवत्तिय कोऊहलवत्तिय जिणभत्तिरागेण, अप्पेगइया सक्कस्स वयणमणुवट्टमाणा अप्पेगइया अण्णमण्णमणुवट्टमाणा अप्पेगइया जीयमेयं एवमाइ त्तिकट्टु जाव पाउब्भवति ॥१३॥

अर्थ—हरिणगमेषी देव द्वारा की गई उपरोक्त उद्घोषणा को सुन कर सौधर्म विमानवासी देव और देवियाँ अत्यन्त प्रसन्न होते हैं। उनके हृदय हर्ष से विकसित हो जाते हैं। तब उनमें से कितनेक तीर्थङ्कर भगवान् को वन्दना करने के लिए और कितनेक पूजा सत्कार, सम्मान एवं दर्शन के लिए कितनेक कुतूहल के लिए यानी 'वहाँ जाकर शक्रेन्द्र क्या करेंगे' यह देखने के लिए, कितनेक शक्रेन्द्र की आज्ञा का पालन करने के लिए, कितनेक एक दूसरे के अनुवर्ती बने हुए और कितनेक "यह हमारा जीताचार है अर्थात् तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म महोत्सव में शामिल होना यह सम्यग्दृष्टि देवों का कर्तव्य है, यह उनकी परम्परागत रीति है" ऐसा मान कर शक्रेन्द्र के सन्मुख उपस्थित होते हैं ॥१३॥

(दिव्यविमान का निर्माण)

तए ण से सक्के देविंदे देवराया ते विमाणिए देवे य देवीओ य अकालपरिहीण चेव अतिय पाउब्भवमाणे

पामइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे पालयं णामं आभिओगियं देवं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेगखंभ-सय-सण्णिविट्ठं लीलट्ठिय-सालभंजिया-कलियं ईहामिय-उसभ-तुरग-णरमगरविहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभ चमर-कुंजरवणलय-भत्तिचित्तं खंभुग्गयवइरवेइया-परिगयाभिरामं विज्जाहरजमलजुयलजंतजुत्तं विव अच्ची-सहस्समालिणीयं रूवगसहस्सकलियं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुलोयणलेसं, सुहफासं सस्सिरीयरूवं घंटावलिय-महुरमणहरसरं सुहं कंतं दरिसणिज्जं णिउणोविय मिसिमिसंत-मणिरयण-घंटिया-जाल-परिक्खित्तं जोयणसय-सहस्स-विच्छिण्णं पंचजोयणसयमुव्विद्धं सिग्घं तुरियं जइणं णिव्वाहि दिव्वं जाणविमाणं विउव्वाहि, विउव्वित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि ॥१४॥

अर्थ—इसके पश्चात् वह शक्र देवेन्द्र देवराजा उन बहुत से देव और देवियों को शीघ्र ही अपने पास आये हुए देखकर बहुत प्रसन्न होते हैं। फिर पालक नामक आभियोगिक देव को बुलाते हैं। बुलाकर उसे कहते हैं कि हे देवानुप्रिय! अनेक स्तम्भों वाला क्रीड़ा करती हुई पुतलियों सहित, ईहामृग (भेड़िया), वृषभ(बैल), तुरंग (घोड़ा), नर (मनुष्य), मगर (मगरमच्छ) विहग (पक्षी), व्यालक (सर्प), किन्नर (गन्धर्व जाति का देव), रुरु (कृष्ण मृग), शलभ (पतगा), चमर, कुञ्जर (हाथी), वनलता और पद्मलता आदि के चित्रों से चित्रित तथा स्तम्भों पर वज्रमय वेदिका से

चित्रित अतएव सुन्दर विद्याधर देवों के युगल चित्रों से चित्रित हजारों सूर्यों से युक्त, अत्यन्त रूप युक्त, अतिशय प्रकाश युक्त, अवलोकनीय, सुखकारी, स्पर्शवाला, घण्टा की पंक्ति से मनोहर और मधुर स्वर वाला, सुखकारी, कान्तिकारी, दर्शनीय, निपुण कारीगरों द्वारा बनाया हुआ, मणिरत्नों से जड़ा हुआ, एक लाख योजन विस्तार वाला, पाँच सौ योजन की ऊँचाई वाला और प्रस्तुत कार्य को शीघ्र सम्पादित करने वाला ऐसे दिव्य यान विमान की विकुर्वणा करो । विकुर्वणा करके मुझे मेरी आज्ञा वापिस सौंपो अर्थात् इसकी मुझे वापिस सूचना दो ॥१२॥

तए णं से पालए देवे सक्केणं देविंदेण देवरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे जाव वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता तहेव करेइ। तस्स णं दिव्वस्स जाणविमाणस्स तिदिसिं तओ तिसोवाणपडिरूवगा वण्णओ । तेसिं णं पडिरूवगाणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं तोरणा वण्णओ जाव पडिरूवा। तस्स णं जाणविमाणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे, से जहा णामए आलिंग पुक्खरेइ वा जाव दीवियचम्मेइ वा, अणेगसंकुकीलकसहस्सवितए आवड-पच्चावडसेढिपसेढिसुत्थियसोवत्थिय—वद्धमाण—पूसमाणव मच्छडयमगरडगजारमारफुल्लावली पउमपत्तसागरतरंग-वसंतलयपउमलयभत्तिचित्तेहिं सच्छाएहिं सप्पभेहिं समरीइएहिं सउज्जोएहिं णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए। तेसि णं मणीणं वण्णे गंधे फासे य भणियव्वे जहा रायपसेणइज्जे।

तस्स णं भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए पिच्छाघरमंडवे अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे वण्णओ जाव पडिरूवे । तस्स उल्लोए पउमलयभत्तिचित्ते जाव सव्वतवणिज्जमए जाव पडिरूवे । तस्स णं मंडवस्स बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभागंसि महं एगा मणिपेढिया अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं सव्वमणि-मई वण्णओ । तीए उवरिं महं एगे विजयदूसए सव्वर-यणामए वण्णओ । तस्स बहुमज्झदेसभाए एगे वइरामए अंकुसे । एत्थ णं महं एगे कुंभिक्के मुत्तादामे । से णं अण्णेहिं तदद्धुच्चत्तप्पमाणमित्तेहिं चउहिं अद्धकुंभिक्केहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते, ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा सुवण्ण-पयरगमंडिया णाणामणिरयणविविहहारद्धहार उवसोभिया समुदया ईसिं अण्णमण्णमसंसत्ता पुव्वाइएहि वाएहिं मंदं एइज्जमाणा एइज्जमाणा जाव णिव्वुइकरेणं सद्देणं ते पएसे आपूरेमाणा आपूरेमाणा जाव अईव उवसोभेमाणा उवसो-भेमाणा चिट्ठंति ।

तस्स णं सीहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तरपुरच्छि-मेणं एत्थ णं सक्कस्स चउरासीए सामाणियसाहस्सीणं चउरासीए भद्दासणसाहस्सीओ पुरच्छिमेणं अट्ठण्हं अग्ग-महिसीणं एवं दाहिणपुरच्छिमेणं अब्भितरपरिसाए दुवाल-सण्हं देवसाहस्सीणं दाहिणेणं मज्झिमाए चउद्दसण्हं देव-

साहस्सीण दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिर परिसाए सोलसण्ह देवसाहस्सीणं पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणियाहिवईण त्ति। तए णं तस्स सीहासणस्स चउद्दिसिं चउण्ह चउरासीणं आयरक्खदेवसाहस्सीणं एवमाइ विभासियव्वं सूरियाभिगमेणं जाव पच्चप्पिणति ॥१५॥

अर्थ—तत्पश्चात् वह पालक देव शक्रेन्द्र की उपरोक्त आज्ञा को सुन कर प्रसन्न होता है और वैक्रिय समुद्घात करके दिव्य यान विमान की विकुर्वणा करता है। उस विमान में पूर्व, दक्षिण और उत्तर इन तीन दिशाओं में तीन सोपान होते हैं और उनके आगे सुन्दर तोरण होते हैं। उस विमान का मध्य भाग बहुत रमणीय होता है और अनेक कीलों के जड़ने से गूब अच्छी तरह तने हुए मृदङ्ग तथा गेंडे के चमड़े के समान समतल होता है। वह आवर्त्त, प्रत्यावर्त्त, श्रेणी, प्रश्रेणी, स्वस्तिक, वर्द्धमान, पुष्यमाल, पुष्पावली, पद्मपत्र, सागरतरंग, वसन्तलता, पद्मलता आदि शुभ चित्रों से चित्रित होता है। कान्ति, प्रभा और उद्योत युक्त पाँच वर्णों की मणियों से सुशोभित होता है। उन मणियों का वर्ण गन्ध, रस और स्पर्श आदि का वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र के अनुसार जानना चाहिये। उस बहुसमरमणीय भूमिभाग के बीच में अनेक स्तम्भों से युक्त एक प्रेक्षागृह मण्डप होता है। उस प्रेक्षागृह मण्डप के मध्य में एक बड़ी मणिपीठिका होती है। वह मणिपीठिका आठ योजन की लम्बी चौड़ी और चार योजन की मोटी होती है एवं मणिनिर्मित होती है उसके ऊपर एक सिंहासन होता है जो दिव्य देवदूष्य वस्त्र से ढका हुआ होता है। वह सिंहासन रत्न निर्मित होता है। उसके मध्य में वज्ररत्नमय एक अंकुश होता है। वहाँ पर एक मोतियों की माला होती है। उसके चारों तरफ उससे आध

परिणाम वाली अर्द्धकुम्भ के समान चार मुक्तामालाएँ होती हैं। वे मालाएँ सुवर्ण निर्मित प्राकार से वेष्टित और मणियों तथा रत्नों के विचित्र प्रकार के हार, अर्द्धहारों से सुशोभित होती हैं। पूर्वादि दिशाओं के पवन से मन्द मन्द प्रेरित होती हुई उन मालाओं से चित्त को आनन्दित करने वाला और कानों को प्रिय लगने वाला मधुर शब्द निकलता है।

उस सिंहासन के वायव्यकोण में, उत्तर दिशा में और ईशान कोण में शक्रेन्द्र के चौरासी हजार सामानिक देवों के चौरासी हजार भद्रासन होते हैं। पूर्व दिशा में आठ अग्रमहिषियों के आठ भद्रासन होते है। इसी प्रकार आग्नेय कोण में आभ्यन्तर परिषद् के बारह हजार देवों के, दक्षिण दिशा में मध्यम परिषद् के चौदह हजार देवों के, नैऋत्य कोण में बाह्य परिषद् के सोलह हजार देवों के और पश्चिम दिशा में सात अनीकाधिपति देवों के सात भद्रासन होते है। उनके चारों तरफ चारो दिशाओं मे तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों के तीन लाख छत्तीस हजार भद्रासन होते है। यान विमान का वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र में सूर्याभ देव के प्रकरण में बहुत विस्तार के साथ किया गया है उसी के अनुसार यहाँ भी सारा वर्णन जान लेना चाहिये। इस प्रकार दिव्य यान विमान की विकुर्वणा करके वह पालक देव शक्रेन्द्र को उनकी आज्ञा वापिस सौंपता है अर्थात् वह इस बात की सूचना शक्रेन्द्र को देता है कि मैंने आपकी आज्ञा के अनुसार विक्रिया द्वारा दिव्य यान विमान बना कर तय्यार कर दिया है ॥१६॥

(देवराज का आगमन)

तए ण से सक्के देविंदे देवराया हट्ठतुट्ठहियए दिव्व जिणिंदाभिगमणजुग्ग सव्वालकारविभूसिय उत्तरवेउ-व्वियरूव विउव्वइ, विउव्वित्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं सप-रिवाराहि णट्टाणीएणं गधव्वाणीएण य सद्धिं त विमाण अणुप्पयाहिणी करेमाणे पुव्विल्लेण तिसोवाणेण दुरूहइ, दुरूहित्ता जाव सीहासणसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे, एव चेव सामाणिया वि उत्तरेण तिसोवाणेण दुरूहित्ता पत्तेय पत्तेय पुव्वण्णत्थेसु भद्दासणेसु णिसीयति, अवसेसा य देवा देवीओ य दाहिणिल्लेण तिसोवाणेण दुरूहित्ता तहेव णिसीयति ॥ १७ ॥

अर्थ—पालक देव द्वारा दिव्य यान विमान के तय्यार हो जाने की सूचना पाकर शक्रेन्द्र का हृदय बहुत प्रसन्न होता है। तत्पश्चात् शक्रेन्द्र उत्तर विक्रिया द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् के सन्मुख जाने योग्य, सब अलङ्कारों से विभूषित उत्तर वैक्रिय रूप बनाते हैं। फिर अपने परिवार सहित आठ अग्रमहिषियों और नृत्यानीक तथा गन्धर्वानीक अर्थात् नृत्य करने वाले और गायन करने वाले देवों के साथ उस विमान की प्रदक्षिणा करते हुए पूर्व दिशा की तरफ वाली त्रिसोपान से उस विमान पर चढ़ कर पूर्व दिशा की तरफ मुँह करके अपने सिंहासन पर बैठते हैं। इसी प्रकार सामानिक देव उत्तरदिशा के सोपान से चढ कर और शेष देव एव देवियाँ दक्षिण दिशा के त्रिसोपान से चढ कर अपने अपने भद्रासन पर बैठते हैं ॥१७॥

तए णं तस्स सक्कस्स तंसि दुरूढस्स इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तयाणंतरं च णं पुण्ण-कलसभिंगारं दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा य दंसणरइय आलोअदरिसणिज्जा वाउद्धुयविजयवेजयंती य समूसिया गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तया-णंतरं छत्तभिंगार तयाणंतरं च णं वइरामयवट्टलट्ठसंठिय-सुसिलिट्ठपरिघट्ठ सुपइट्ठिए विसिट्ठे अणेगवर पंचवण्णकुडभी-सहस्सपरिमंडियाभिरामे वाउद्धूय-विजयवेजयंतीपडागा छत्ता-इछत्त-कलिए तुंगे गगणतलमणुलिहंतसिहरे जोयणसहस्स-भूसिए महइमहालए महिंदज्झए पुरओ अहाणुपुव्वीए संप-ट्ठिए। तयाणंतरं च णं सरूवणेवत्थपरिअच्छियसुसज्जा सव्वालंकार-विभूसिया पंच अणीया पंच अणीयाहिवइणो जाव संपट्ठिया। तयाणंतरं च णं वहवे आभिओगिया देवा य देवीओ य सएहिं सएहिं रूवेहिं जाव णिओगेहिं सक्कं देविंदं देवरायं पुरओ य मग्गओ य पासओ य अहाणु-पुव्वीए संपट्ठिया। तयाणंतरं च वहवे सोहम्मकप्पवासी देवा य देवीओ य सव्विड्ढीए जाव दुरूढा समाणा मग्गओ य जाव संपट्ठिया ॥ १८ ॥

अर्थ—जब शक्रेन्द्र अपने सिंहासन पर बैठ जाते हैं, तब उनके आगे आठ मङ्गल यथाक्रम से चलते हैं—पूर्णकलश, झारी, दिव्य छत्र, चमर और पताका आदि। इसके बाद उन्नत गगनतल

को स्पर्श करती हुई, आँखों को सुखकारी एवं दर्शनीय वायु से प्रेरित विजय वैजयन्ती नामक पताकाएँ चलती हैं। तदनन्तर छत्रसहित कलश चलता है। इसके आगे अनेक प्रकार का पाँच वर्ण वाली अन्य छोटी ध्वजाओं से सुशोभित, वायु से प्रेरित वैजयन्ती नामक पताकाओं से तथा छत्रातिछत्र से युक्त, गगनतल को स्पर्श करने वाली एक हजार योजन की महेन्द्रध्वजा चलती है। इसके बाद अपने योग्य रूप और वेशभूषा से सुसज्जित तथा सब अलंकारों से विभूषित पाँच अनीक और पाँच अनीकाधिपति देव चलते हैं। तत्पश्चात् बहुत से देव और देवियाँ अपनी-अपनी ऋद्धि से युक्त होकर दिव्य यान विमानों पर बैठे हुए शक्रेन्द्र के आगे, पीछे एवं आसपास यथायोग्य चलते हैं ॥१८॥

तए णं से सक्के देविंदे देवराया तेण पंचाणीयपरिक्खित्तेण जाव परिवुडे सव्विड्ढीए जाव रवेण सोहम्मस्स कप्पस्स मज्झमज्झेणं तं दिव्वं देविड्ढि जाव उवदंसेमाणे उवदंसेमाणे जेणेव सोहम्मस्स कप्पस्स उत्तरिल्ले णिज्जाण-मग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता साहस्सीएहिं विग्गेहिं ओवयमाणे ओवयमाणे ताए उक्किट्ठाए जाव देवगईए वीई-वयमाणे वीईवयमाणे तिरियमसंखिज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झमज्झेणं जेणेव णंदीसरवरे दीवे जेणेव दाहिणपुरत्थि-मिल्ले रइकरगपव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं जा चेव सूरियाभस्स वत्तव्वया णवरं सक्काहिगारो वत्तव्वो जाव तं दिव्वं देविड्ढि जाव दिव्वं जाणविमाणं पडिसाहर-माणे पडिसाहरमाणे जाव जेणेव भगवओ तित्थयरस्स

जम्मणणयरे जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मण भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणं तेणं दिव्वेणं जाणविमाणेणं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता भगवओ तित्थयरस्स जम्मण भवणस्स उत्तरपुरच्छिमे दिसीभाए चउरंगुलमसंपत्ते धरणीयले तं दिव्वं जाणविमाणं ठवइ, ठवित्ता अट्ठहिं अग्गमहिसीहिं दोहिं अणीएहिं गंधव्वाणीएण य णट्टाणीएण य सद्धिं ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ पुरच्छिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ।

तए णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो चउरासीइसामाणियसाहस्सीओ ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ उत्तरिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति। अवसेसा देवा य देवीओ य ताओ दिव्वाओ जाणविमाणाओ दाहिणिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहंति ॥ १९ ॥

अर्थ—इसके पश्चात पाँच अनीक यावत् चौरासी हजार सामानिक देवों से घिरा हुआ और महेन्द्रध्वजा जिनके आगे चलती है ऐसे शक्रेन्द्र अपनी समस्त ऋद्धि तथा वादित्रों के महान् शब्दों के साथ, सौधर्म देवलोक के बीचोबीच होकर अपनी दिव्य देवऋद्धि का प्रदर्शन करते हुए जहाँ सौधर्म देवलोक का उत्तर दिशा मे रास्ता है वहाँ आते है। वहाँ एक लाख योजन का शरीर बना कर उस निर्याण मार्ग से निकल कर तिर्च्छालोक के असख्यात द्वीप समुद्रो से होते हुए नन्दीश्वर द्वीप मे आग्नेय कोण मे स्थित

रतिकर पर्वत पर आते हैं। इस प्रकार राजप्रश्नीय सूत्र में सूर्याभदेव का जैसी वक्तव्यता कही है वैसी यहाँ भी कह देनी चाहिए, किन्तु इतनी विशेषता है कि यहाँ शक्रेन्द्र का अधिकार है, इसलिए शक्रेन्द्र का कथन करना चाहिए।

तत्पश्चात् वे शक्रेन्द्र अपनी दिव्य देव ऋद्धि तथा यान विमान का सकोच करके तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म नगर मे आते हैं। वहाँ आकर उस दिव्य यान विमान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन की तीन बार प्रदक्षिणा करते हैं। तत्पश्चात् ईशानकोण मे पृथ्वी से चार अङ्गुल ऊपर उस दिव्य यान विमान को रख देते हैं। फिर आठ अग्रमहिषियाँ और गन्धर्वानीक तथा नृत्यानीक इन दो अनीकों के साथ शक्रेन्द्र पूर्व दिशा की सीढी द्वारा उस यान विमान से नीचे उतरते हैं। फिर शक्रेन्द्र के चौरासी हजार सामानिक देव उत्तर दिशा की सीढी द्वारा और बाकी देव और देवियाँ दक्षिण दिशा की सीढी द्वारा उस दिव्य यान विमान से नीचे उतरते हैं ॥१६॥

(धन्य हो ! रत्नकुक्षिधारिणी को)

तए णं से सक्के देविंदे देवराया चउरासीए सामाणियसाहस्सीहिं जाव सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव दुंदुहिणिग्घोसणाइयरवेण जेणेव भगवं तित्थयरे तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आलोए चेव पणामं करेइ, करित्ता भगवं तित्थयरं तित्थयरमायरं च तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता करयल जाव एवं वयासी— णमोत्थुणं ते रयणकुच्छिधारिए एवं जहा दिसाकुमारीओ

धण्णासि पुण्णासि तं कयत्थासि । अहण्णं देवाणुप्पिए ! सक्के णामं देविंदे देवराया भगवओ तित्थयरस्स जम्मण महिमं करिस्सामि तण्णं तुब्भेहिं ण भीइयव्वं त्तिकट्टु ओसोवणिं दलयइ, दलयित्ता तित्थयरपडिरूवगं विउव्वइ, विउव्वित्ता एगे सक्के भगवं तित्थयरं करयलपुडेणं गिण्हइ, एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, दुवे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति, एगे सक्के पुरओ वज्जपाणी पकड्ढइ । तए णं से सक्के देविंदे देवराया अण्णेहिं वहूहिं भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणिएहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव णाइएणं ताए उक्किट्ठाए जाव वीईवयमाणे वीईवयमाणे जेणेव मंदरे पव्वए जेणेव पंडगवणे जेणेव अभिसेयसिला जेणेव अभिसेयसीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभि-मुहे सण्णिसण्णे ॥ २० ॥

अर्थ—तत्पश्चात् वह शक्रेन्द्र चौरासी हजार सामानिक देवों के साथ अपनी सब ऋद्धि और द्युति सहित दुंदुभि के महान् शब्दों के साथ तीर्थङ्कर भगवान् और उनकी माता के पास आते हैं। उन्हें देखते ही शक्रेन्द्र उन्हें प्रणाम करते है और तीन बार प्रदक्षिणा करके दोनों हाथ जोड़ कर इस प्रकार कहते हैं कि हे रत्नकुक्षिधारिके ! आपको नमस्कार हो । इत्यादि जैसा दिशा-कुमारी देवियो ने कहा था वैसा ही शक्रेन्द्र भी कहते है कि आप धन्य है, पुण्यवती है, कृतार्थ हैं। हे देवानुप्रिये ! मै शक्र नामक

देवेन्द्र देवराजा हूँ। मैं तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करूँगा, इससे आप डरें नहीं। ऐसा कह कर वे उन्हें अवस्वापिनी निद्रा से निद्रित कर देते हैं और तीर्थङ्कर भगवान् के सदृश रूप बना कर उनके पास रख देते हैं। फिर शक्रेन्द्र अपने समान पाँच रूप बनाते हैं। एक शक्र तीर्थङ्कर भगवान् को करतल में यानी हथेली पर उठाता है। एक शक्र पीछे छत्र धारण करता है। दो शक्र दोनों तरफ चमर ढोलते हैं और एक शक्र हाथ में वज्र धारण कर आगे चलता है।

तत्पश्चात् वह शक्रेन्द्र दूसरे बहुत से भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी, और वैमानिक देव एवं देवियों के साथ अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि और द्युति सहित उत्कृष्ट दिव्यदेवगति से चलते हुए मेरु पर्वत के पण्डकवन में अभिषेकशिला पर स्थित अभिषेक सिंहासन के पास आते हैं और उस सिंहासन पर तीर्थङ्कर भगवान को पूर्वाभिमुख यानी पूर्व दिशा की तरफ मुँह करवा कर बैठाते हैं। २०॥

(मेरू पर्वत पर)

तेणं कालेणं तेणं समएणं ईसाणे देविंदे देवराया सूलपाणी वसभवाहणे सुरिंदे उत्तरड्ढलोगाहिवई अट्ठावीस विमाणवाससयसहस्साहिवई अरयंबरवत्थधरे एवं जहा सक्के, इमं णाणत्तं, महाघोसा घंटा, लहुपरक्कमो पायत्ताणीयाहिवई पुप्फओ विमाणकारी, दक्खिणे णिज्जाणमग्गे, उत्तरपुरच्छिमिल्लो रइकरगपव्वओ मंदरे समोसरइ जाव पज्जुवासइ। एवं अवसिट्ठा वि इंदा भणियव्वा जाव अच्चुओत्ति, इमं णाणत्तं—

चउरासीइ असीइ, बावत्तरी सत्तरी य सट्ठी य ।
पण्णा चत्तलीसा, तीसा वीसा दस सहस्सा ॥
॥ एए सामाणिया ॥

बत्तीसट्ठावीसा बारसट्ठ चउरो सयसहस्सा ।
पण्णा चत्तालीसा, छच्च सहस्सारे ॥
आणयपाणयकप्पे, चत्तारिसया आरणच्चुए तिण्णि ।
एए विमाणाणं, इमे जाण विमाणकारी देवा ॥

सोहम्मगाणं सणंकुमारगाणं बंभलोयगाणं महासुक्याणं पाणयगाणं इंदाणं सुघोसा घंटा । हरिणेगमेसी पायत्ताणीयाहिवई उत्तरिल्ला णिज्जाणभूमि, दाहिणपुरच्छिमिल्ले रइकरगपव्वए। ईसाणगाणं माहिंद-लंतग-सहस्सारअच्चुयगाणं य इंदाणं महाघोसा घंटा, लहुपरक्कमो पायत्ताणीयाहिवई, दक्खिणिल्ले णिज्जाणमग्गे, उत्तरपुरच्छिमिल्ले रइकरगपव्वए। परिसा णं जहा जीवाजीवाभिगमे। आयरक्खा सामाणियचउग्गुणा, सव्वेसिं जाणविमाणा सव्वेसिं जोयणसयसहस्सविच्छिण्णा, उच्चत्तेणं सविमाणप्पमाणा महिंदज्झया जोयणसहस्सीआ, सक्कवज्जा मंदरे समोसरंति जाव पज्जुवासेंति ॥२१॥

अर्थ—तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म के समय में ईशान नामक देवेन्द्र देवराजा जो कि हाथ मे शूल धारण करने वाले, वृषभवाहन देवों के इन्द्र, मेरु पर्वत से उत्तर के अर्द्ध लोक के स्वामी, आकाश

के समान स्वच्छ एव रजरहित निर्मल वस्त्रों को धारण करने वाले और अट्ठाईस लाख विमानों के स्वामी हैं, उनका आसन चलित होता है। तब वे अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर उनका जन्म महोत्सव करने के लिए जाते हैं इत्यादि वर्णन जैसा शक्रेन्द्र के लिए कहा है वैसा ही यहाँ पर भी समझना चाहिये किन्तु इनकी विशेषता है कि—इनके महाघोषा नामक घण्टा होता है। पदाति सेना का अधिपति लघुपराक्रम नामक देव उस बजाता है। पुष्पक नामक देव यान विमान की विक्रिया करता है। दक्षिण दिशा के निर्याणमार्ग से ईशानेन्द्र नीचे उतरते हैं और ईशानकोण के रतिकर पर्वत पर विश्राम लेते हैं, फिर सीधे मेरु पर्वत जाते हैं और तीर्थङ्कर भगवान् की पर्युपासना करते हैं।

इसी प्रकार बारहवें अच्युत देवलोक तक के शेष सभी इन्द्रों का कथन कर देना चाहिये किन्तु उनमें जो विशेषता है वह पृथक् बताई जाती है। उनके सामानिक देवों की संख्या इस प्रकार है—सौधर्मेन्द्र के चौरासी हजार, ईशानेन्द्र के अस्सी हजार, सनत्कुमारेन्द्र के बहत्तर हजार, माहेन्द्र के सित्तर हजार, ब्रह्मलोकेन्द्र के साठ हजार, लान्तकेन्द्र के पचास हजार शुक्रेन्द्र के चालीस हजार, सहस्रारेन्द्र के तीस हजार, आणत और प्राणत नामक नवमें और दसवें दोनों देवलोकों का एक ही इन्द्र होता है, उसके बीस हजार व आरण और अच्युत नामक ग्यारहवें और बारहवें दोनों देवलोकों का एक ही इन्द्र होता है उसके दस हजार सामानिक देव होते हैं।

अब क्रमशः इन बारह देवलोकों के दस इन्द्रों के विमानों की संख्या बताई जाती है—

(१) बत्तीस लाख। अट्ठाईस लाख। (३) बारह लाख। (४) आठ लाख। (५) चार लाख (६) पचास हजार। (७) चालीस हजार (८) छह हजार (९) चार सौ (१०) तीन सौ।

अब इन दस इन्द्रो के यानविमान बनाने वाले देवों के नाम क्रमशः बतलाये जाते है—

(१) पालक (२) पुष्पक (३) सौमनस (४) श्री वत्स (५) नन्दावर्त (६ कामगम (७) प्रीतिगम (८) मनोरम (९) विमल (१०) सर्वतोभद्र।

अब इन दस इन्द्रों में समुच्चय रूप से कुछ बातों की समानता बताई जाती है—सौधर्म, सनत्कुमार, ब्रह्मलोक, महाशुक्र और आणत प्राणत इन देवलोक के पांच इन्द्रों के सुघोषा घण्टा, हरिणगमेषी नामक देव पदाति सेना का अधिपति उत्तर दिशा का निर्याणमार्ग और आग्नेयकोण का रतिकर पर्वत विश्रामस्थान होता है।

ईशान, माहेन्द्र लान्तक, सहस्रार और आरण अच्युत इन देवलोकों के पाँच इन्द्रो के महाघोषा नामक घण्टा, लघुपराक्रम देव पदातिसेना का अधिपति, दक्षिण दिशा का निर्याण मार्ग और ईशानकोण का रतिकर पर्वत विश्राम स्थान होता है।

इन सब इन्द्रों को आभ्यन्तर, मध्य और बाह्य ये तीनों परिषदाएँ जिस प्रकार जीवाजीवाभिगम सूत्र में कही है उसी प्रकार यहाँ भी जाननी चाहिये।

सब इन्द्रो के आत्मरक्षक देव समानिक देवों से चौगुने होते है। सब इन्द्रो के यानविमान एक लाख योजन के लम्बे चौड़े होते है और अपने अपने देवलोक के विमान जितने ऊँचे होते है। सबकी माहेन्द्रध्वजा एक हजार योजन की होती है। प्रथम सौधर्म देवलोक के इन्द्र तो तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म नगर मे आते है और शेष नौ इन्द्र अपने-अपने देवलोक से सीधे मेरु पर्वत पर जाते है ॥२१॥

तेण कालेण तेण समएण चमरे असुरिंदे असुरराया चमरचचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरसि सीहासणंसि चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं तेत्तीसाए तायत्तीसेहि चउहि लोगपालेहि पचहिं अग्गमहिसीहिं सपरिवाराहि तीहि परिसाहि सत्तहिं अणीएहिं सत्तहि अणीयाहिवईहि चउहि चउसट्ठीहिं आयरक्खसाहस्सीहि अण्णेहिं य जहा सक्के, णवर इमं णाणत्त–दुमो पायत्ताणीयाहिवई, ओहस्सरा घंटा, विमाणं पण्णासं जोयणसहस्साइ महिंदज्झओ पचजोयणसयाइ, विमाणकारी आभिओगिओ देवो, अवसिट्ठं त चेव जाव मदरं समोसरइ पज्जुवासइ ॥२७॥

अर्थ—असुरकुमार जाति के देवों का इन्द्र चमरेन्द्र चमरचञ्चा राजधानी में चमर सिंहासन पर बैठा होता है। वह चौसठ हजार सामानिक देव तेतीस त्रायस्त्रिंशक, चार लोकपाल, परिवार सहित पाँच अग्रमहिषियाँ, तीन परिषदा, सात अनीक, सात अनीकाधिपति देव, दो लाख छप्पन हजार आत्मरक्षक देव, और अन्य बहुत देव और देवियों से परिवृत्त होकर भोग भोगता हुआ विचरण करता है। जिस समय तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म होता है, उस समय उसका आसन चलित होता है तब अवधिज्ञान से तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर उसका जन्म महोत्सव करने के लिए तिर्च्छालोक में आता है, इत्यादि सारा वर्णन शक्रेन्द्र के समान जानना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है—पदाति सेना का अधिपति द्रुम नामक देव होता है, ओघस्वरा घण्टा, पचास हजार योजन का लम्बा चौड़ा विमान, पाँच सौ योजन की ऊँची

महेन्द्रध्वजा और विमान बनाने वाला आभियोगिक देव होता है। शेष सारा वर्णन पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिये तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करने के लिए चमरेन्द्र अपने स्थान से सीधा मेरु पर्वत पर जाता है ॥२२॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं बली असुरिंदे असुरराया एवमेव णवरं सट्ठी सामाणियसाहस्सीओ, चउगुणा आयरक्खा, महादुमो पायत्ताणीयाहिवई, महाओहस्सरा घंटा तं चेव परिसाओ जहा जीवाभिगमे ॥२३॥

अर्थ—बलीचञ्चा राजधानी मे बलीन्द्र नामक असुरेन्द्र असुर राजा यावत् भोग भोगता हुआ विचरता है। उसका सारा वर्णन चमरेन्द्र की तरह जानना चाहिये; सिर्फ इतनी विशेषता है कि—इनके साठ हजार सामानिक देव, दो लाख चालीस हजार आत्म रक्षक देव, पदाति सेना का अधिपति महाद्रुम देव और महा ओघस्वरा घण्टा होती है। शेष सारा वर्णन पूर्वोक्त प्रकार से जानना चाहिये। परिषदाओं का वर्णन जैसा जीवाभिगम सूत्र में कहा है, वैसा ही यहाँ जानना चाहिये। वह बलीन्द्र सीधा मेरु पर्वत पर जाता है ॥२३॥

तेणं कालेणं तेणं समएणं धरणे तहेव णाणत्तं छ सामाणियसाहस्सीओ छ अग्गमहिसीओ, चउग्गुणा आयरक्खा, मेघस्सरा घंटा, भद्दसेणो पायत्ताणीयाहिवई विमाणं पणवीसं जोयणसहस्साइं महिंदज्झओ अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं। एवमसुरिंदवज्जियाणं भवणवासिइंदाणं, णवरं असुराणं ओघस्सरा घंटा, णागाणं मेघस्सरा, सुवण्णाणं

हमस्सरा, निज्जूणं कोंचस्सरा, अग्गीण मजुस्सरा, दिसाणं मजुघोसा, उदहीणं सुस्सरा दीवाणं महुरस्सरा, वाऊण णंदिस्सरा, थणियाण णंदिघोसा।

चउसट्ठी सट्ठी खलु, छच्च सहस्सा उ असुरवज्जाण।
सामाणिया उ एए, चउग्गुणा आयरक्खा उ॥
दाहिणिल्लाण पायत्ताणीयाहिवई।
भद्दसेणो उत्तरिल्लाण दक्खो त्ति ॥२४॥

अर्थ—दक्षिण दिशा के नागकुमारों का इन्द्र धरण आनन्द पूर्वक भोग भोगता हुआ विचरण करता है। तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म के समय उसका आसन चलित होता है। तब अवधिज्ञान द्वारा तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म हुआ जान कर उनका जन्म महोत्सव करने के लिये अपनी सम्पूर्ण ऋद्धि सहित वह मेरु पर्वत पर जाता है। इसका सारा वर्णन पूर्वोक्त वर्णन के समान समझना चाहिये सिर्फ इतना फर्क है कि—इसके छह हजार सामानिक देव, छह अग्रमहिषियाँ, चौबीस हजार आत्मरक्षक देव, मेघस्वरा घण्टा, पदाति सेना का अधिपति भद्रसेन, पचीस हजार योजन का लम्बा चौड़ा विमान और अढाई सौ योजन की ऊँची महेन्द्रध्वजा होती है।

चमरेन्द्र और बलीन्द्र के सिवाय दक्षिण और उत्तर दिशा के नौ जाति के भवनपति देवों के अठारह इन्द्रों का वर्णन धरणेन्द्र के समान जानना चाहिए।

दस भवनपति देवों में पारस्परिक जो विशेषता होती है अब वह बतलाई जाती है—असुरकुमारों के ओघस्वरा घण्टा, नागकुमारों के मेघस्वरा, सुवर्णकुमारों के हंसस्वरा, विद्युत्कुमारों के

क्रौंचस्वरा, अग्निकुमारों के मञ्जुस्वरा, दिशाकुमारों के मञ्जुघोषा, उदधिकुमारो के सुस्वरा, द्वीपकुमारो के मधुरस्वरा, वायुकुमारों के नन्दिघोषा नामक होती है।

अब एक संग्रहणी गाथा द्वारा भवनपति देवों के इन्द्रों के सामानिक और आत्मरक्षक देवों की संख्या बतलाई गई है—

चमरेन्द्र के ६४ हजार, बलीन्द्र के ६० हजार, और शेष भवनपति देवो के अठारह इन्द्रों के प्रत्येक के छह छह हजार सामानिक देव होते है और आत्मरक्षक देव इनसे चौगुने होते है अर्थात् चमरेन्द्र के दो लाख छप्पन हजार, बलीन्द्र के दो लाख चालीस हजार और शेष अठारह इन्द्रो के चौबीस हजार आत्म रक्षक देव होते है।

इस जाति के भवनपति देवों में दक्षिण दिशा के दस इन्द्र और उत्तर दिशा के दस इन्द्र, इस प्रकार बीस इन्द्र होते हैं। दक्षिण दिशा के इन्द्रों में चमरेन्द्र की पदाति सेना का अधिपति द्रुम नामक देव होता है और शेष नौ इन्द्रो की पदाति सेना का अधिपति भद्रसेन नामक देव होता है। उत्तर दिशा के इन्द्रों में बलीन्द्र की पदाति सेना का अधिपति महाद्रुम नामक देव होता है और शेष नौ इन्द्रों की पदाति सेना का अधिपति दक्ष नामक देव होता है ॥२४॥

वाणमंतर—जोइसिया णेयव्वा एवं चेव णवरं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ, चत्तारि अग्गमहिसीओ, सोलस आयरक्खसहस्सा, विमाणा जोयण सहस्सं, महिंदज्झया पणवीस जोयणसयं, घंटा दाहिणाणं मंजुस्सरा, उत्तराणं मंजुघोसा, पायत्ताणीयाहिवई विमाणकारी य आभियोगा

देवा। जोइसियाण सुस्सरा सुस्सरणिग्घोसाओ घंटाओ, मंदरे समोसरणं जाव पज्जुवासंति ॥२५॥

अर्थ—वाणव्यन्तर और ज्योतिषीदेवों के इन्द्रों का वर्णन भवनपति देवों के इन्द्रों के समान जानना चाहिये। इनमें सिर्फ इतना फर्क है—उनमें प्रत्येक इन्द्र के चार हजार सामानिक देव, चार अग्रमहिषियाँ, सोलह हजार आत्मरक्षक देव होते हैं। इनके विमान एक हजार योजन लम्बे चौड़े होते हैं और महेन्द्रध्वजा एक सो पचीस योजन की ऊँची होती है।

वाणव्यंतर जाति के देवों के बत्तीस इन्द्र होते हैं, उनमें से दक्षिण दिशा के सोलह इन्द्रों के मञ्जुस्वरा नामक घण्टा होती है और उत्तर दिशा के सोलह इन्द्रों के मञ्जुघोषा नामक घण्टा होती है। इन सब इन्द्रों के पदाति सेना का अधिपति और यानविमान बनाने वाला आभियोगिक देव ही होता है।

ज्योतिषी देवों में चन्द्र जाति के देवों के इन्द्र के सुस्वरा और सूर्य जाति के देवों के इन्द्र के सुस्वर निर्घोषा घण्टा होती है।

इस प्रकार वैमानिक देवों के दस इन्द्र, भवनपति देवों के बीस इन्द्र, वाणव्यन्तर जाति के देवों के बत्तीस इन्द्र और ज्योतिषी देवों के दो इन्द्र ये कुल मिलाकर ६४ इन्द्र मेरु पर्वत पर तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करते हैं। इनमें से सौधर्मदेवलोक के इन्द्र तो तीर्थङ्कर भगवान् के जन्मनगर एवं जन्म स्थान में आकर तीर्थङ्कर भगवान् को मेरु पर्वत पर ले जाते हैं। शेष ६३ इन्द्र अपने अपने स्थान से सीधे मेरु पर्वत पर जाते हैं। वहाँ मेरु पर्वत पर ये चौसठ इन्द्र मिल कर तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करते हैं ॥२५॥

(इन्द्रों द्वारा अभिषेक)

तए णं से अच्चुए देविंदे देवराया महं देवाहिवे आभिओगे देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! महत्थं महग्घं महारिहं विउलं तित्थयराभिसेयं उवट्ठवेह ॥२६॥

अर्थ—इसके बाद सब इन्द्रों में बड़े तथा सब देवों के स्वामी अच्युत नामक देवेन्द्र देवराजा आभियोगिक देवों को बुलाते हैं और बुला कर इस प्रकार कहते हैं कि—हे देवानुप्रियो ! महान् प्रयोजन वाला, महामूल्यवान और महापुरुषों के योग्य तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक यानी जन्ममहोत्सव करने योग्य समस्त सामग्री मेरे पास लाओ ॥२६॥

तए णं ते आभिओगा देवा हट्ठतुट्ठ जाव पडिसुणित्ता उत्तरपुरच्छिमं दिसीभागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं जाव समोहणित्ता अट्ठसहस्सं सोवण्णिय कलसाणं, एवं रुप्पमयाणं मणिमयाणं सुवण्णरुप्पमयाणं सुवण्णमणिमयाणं रुप्पमणिमयाणं सुवण्णरुप्पमणिमयाणं, अट्ठसहस्सं भोमिज्जाणं, अट्ठसहस्सं चंदणकलसाणं, एवं भिंगाराणं, आयंसाणं, थालाणं, पाईणं, सुपइट्ठगाणं, चित्ताणं. रयणकरंडगाणं, वायकरगाणं, पुप्फचंगेरीणं, एवं जहा सुरियाभस्स सव्वचंगेरीओ सव्वपडलगाइं विसेसियतराइं भणियव्वाइं, सीहासणछत्तचामरतेल्लसमुग्ग जाव

सरिसवसमुग्गा तालियंटा जाव अट्ठसहस्स कडुच्छुगाण विउव्वंति, विउव्वित्ता साहाविए विउव्विए य कलसे जाव कडुच्छुए य गिण्हित्ता जेणेव खीरोदए समुद्दे तेणेव खीरोदग गिण्हति, गिण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं पउमाइं जाव सहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हत्ति, एव पुक्खरोदाओ जाव भरहेरवयाण मागहाइतित्थाण उदग मट्टिय य गिण्हति, गिण्हित्ता एव गगाईण महाणईण जाव चुल्लहिमवताओ सव्वतुअरे सव्वपुप्फे सव्वगधे सव्वमल्ले जाव सव्वोसहीओ सिद्धत्थए य गिण्हति, गिण्हित्ता पउमद्दहाओ दहोदग उप्पलाईणि य, एव सव्वकुलपव्वएसु वट्टवेयड्ढेसु सव्व-महद्दहेसु सव्ववासेसु सव्वचक्कवट्टिविजएसु वक्खारपव्वएसु अंतरणईसु विभामिज्जा जाव उत्तरकुरुसु जाव सुदसणभद्द-सालवणे सव्वतुअरे जाव सिद्धत्थए य गिण्हति, एव णदणवणाओ सव्वतुअरे जाव सिद्धत्थए य सरस य गोसीसचदण दिव्व य सुमणदाम गिण्हति एव सोमणस-पडगवणाओ य सव्वतुअरे जाव सुमणदाम दद्दरमलय-सुगधिए गधे य गिण्हति, गिण्हित्ता एगओ मिलंति, मिलित्ता जेणेव सामी तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता महत्थ जाव तित्थयराभिसेय उवट्ठवेंति ॥२७॥

अर्थ—अच्युतेन्द्र की उपरोक्त आज्ञा को सुन कर वे आभि-योगिक देव बड़े प्रसन्न होते हैं। तत्पश्चात् ईशान कोण में जाकर

वैक्रिय समुद्घात करते हैं। फिर वैक्रिय द्वारा १००८ सोने के कलश, १००८ चाँदी के कलश, १००८ मणियों के कलश, १००८ सोने और मणियों के कलश, १००८ चाँदी और मणियो के कलश, १००८ सोने चाँदी और मणियों के कलश, १००८ मिट्टी के कलश, १००८ चन्दन के कलश, १००८ झारी, १००८ काच, १००८ थाली, १००८ कटोरी, १००८ सुप्रतिष्ठक नामक पात्र विशेष, १००८ चित्र १००८ रत्नों के करंडिए, १००८ वातकरक अर्थात् बाहर से चित्रित और भीतर से जलरहित खाली घड़े, १००८ फूलों की टोकरियाँ, १००८ आभूषणों की टोकरियाँ, १००८ फूलों की टोकरियों को ढकने के कपड़े, १००८ आभूषणों की टोकरियो को ढकने के कपड़े, १००८ पंखे और १००८ धूप देने के कुड़छे, सिंहासन, छत्र, चामर, तथा तेल और सरसो के डिब्बे आदि बनाते है। राजप्रश्नोय सूत्र मे सूर्याभदेव के इन्द्राभिषेक के समय जैसा कथन किया है, वैसा हो यहाँ भी जानना चाहिये; किन्तु यहाँ सब पदार्थों का कथन उनसे विशेष रूप से करना चाहिये। आभियोगिक देव इन सब पदार्थों को विक्रिया से बनाते है। तत्पश्चात वैक्रिय किये हुए इन कलशादि पदार्थों को और स्वाभाविक पदार्थों को ग्रहण करके क्षीरोदक समुद्र मे से जल और कमल ग्रहण करते है। तत्पश्चात भरत और ऐरवत क्षेत्र के मागंध आदि तीर्थों से जल और मिट्टी, गङ्गा आदि महानदियो से जल और मिट्टी, चुल्लहिमवान् पर्वत से सब प्रकार की औषधियाँ सुगन्धित पदार्थ, भिन्न-भिन्न प्रकार से गूंथी हुई फूलमालाएँ, राजहंसादि महौषधियाँ और सब प्रकार के मांगलिक पदार्थो को ग्रहण करते है। इसी प्रकार हिमालय आदि सब कुल पर्वत, वृत्तवैताढ्य पर्वत, पद्मद्रह, भरतादि सब क्षेत्र चक्रवर्तियों के सब विजय, माल्यवान् और चित्रकूट आदि सब वक्षस्कार पर्वत और ग्राहावती आदि समस्त अन्तर्नदियों के विषय

में कह देना चाहिये अर्थात् पर्वतों से तुवर आदि औषधियाँ, द्रहों में से कमल, कर्मभूमि के क्षेत्रों में रहे हुए मागध आदि तीर्थों में से जल और मिट्टी तथा नदियों के गंगा तटों की मिट्टी और जल ग्रहण करते हैं। सुदर्शन पर्वत, भद्रशाल वन और नन्दन वन से तथा सोमनस और पण्डक वन से गोशीर्ष चन्दन, सब प्रकार की औषधियाँ यावत् फूलमालाएँ आदि तथा दर्दर पर्वत और मलय पर्वत से चन्दन एवं चन्दन से सुगन्धित पदार्थों को ग्रहण करते हैं। तत्पश्चात् इस समस्त सामग्री का ग्रहण करने के लिए इधर-उधर बिखरे हुए वे सब आभियोगिक देव एक जगह इकट्ठे होते हैं और त्रिलोकपूज्य तीर्थङ्कर भगवान् के जन्माभिषेक योग्य समस्त सामग्री को लेकर अच्युतेन्द्र के पास आते हैं ॥२७॥

तए ण से अच्चुए देविंदे देवराया दसहि सामाणिय-साहस्सीहिं तेतीसेहिं तायत्तीसएहि चउहिं लोगपालेहिं तिहि परिसाहिं सत्तहिं अणीएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं चत्तालीसाए आयरक्खदेवसाहस्सीहि सद्धिं संपरिवुडे तेहिं साभाविएहिं विउव्विहि य वरकमलपइट्ठाणेहिं सुरभिवरवारिपडिपुण्णेहिं चंदणकयचचाएहि आविद्धकंठेगुणेहिं पउमुप्पल-पिहाणेहिं करयलसुकुमारपरिग्गहिएहिं अट्ठसहस्सेणं सोवण्णियाण कलसाण जाव अट्ठसहस्सेणं भोमेज्जाणं जाव सव्वोदएहि सव्वमट्टियाहिं सव्वतुअरहि जाव सव्वोसहि-सिद्धत्थएहि सव्विड्ढीए जाव रवेण महया महया तित्थयरा-भिसेएण अभिसिंचति ॥ २८ ॥

अर्थ—जब आभियोगिक देव तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक करने योग्य समस्त सामग्री लाकर अच्युतेन्द्र के पास रख देते हैं तब दस हजार सामानिक देव, तेतीस त्रायस्त्रिंशक, चार लोकपाल, तीन परिषदा, सात अनीक, सात अनिकाधिपति देव और चलीस हजार आत्मरक्षक देवों से संपरिवृत्त वे अच्युतेन्द्र देवराजा उन स्वाभाविक और विक्रिया द्वारा बनाये हुए श्रेष्ठ कमलों से युक्त सुगन्धित जल से परिपूर्ण, चन्दन चर्चित, कमल के ढक्कनों से युक्त, कोमल हाथों द्वारा ग्रहण किये हुए सोने चाँदी मिट्टी आदि से बने हुए कुल आठ हजार चौसठ कलशों से यावत् सब जल, सब मिट्टी, सब ओषधि और सिद्धार्थादि सब मांगलिक पदार्थों से एव तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक करने योग्य समस्त सामग्री से जयनाद के महान् शब्दों के साथ तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक करते हैं ॥२८॥

तए णं सामिस्स महया महया अभिसेयंसि वट्टमाणंसि इंदाइया देवा छत्तचामरधूवकडुच्छुए पुप्फगंध जाव हत्थगया हट्ठतुट्ठ जाव सूलपाणी पुरओ चिट्ठंति पंजलिउडा, एवं विजयाणुसारेणं जाव अप्पेगइया देवा आसिअसंमज्जिओवलित्तसित्तसुइसम्मट्ठरत्थंतरावणवीहियं करेंति जाव गंधवट्टिभूयं, अप्पेगइया हिरण्णवासं वासंति एवं सुवण्णरयणवइरआभरणपत्तपुप्फफलबीयमल्लगंधवण्ण जाव चुण्णवासं वासंति, अप्पेगइया हिरण्णविहिं भाइंति, एवं जाव चुण्णविहिं भाइंति। अप्पेगइया चउव्विहं वज्जं वाएंति तंजहा—ततं, विततं, घणं, भूसिरं। अप्पेगइया चउव्विहं गेयं

गायति तंजहा–उक्खित्त, पायत्त, मदाइयं, रोइयावसाण। अप्पेगइया चउव्विह णट्ट णच्चति तजहा–अचिअ दुअ, आरभड, भमोल। अप्पेगइया चउव्विह अभिणय अभिणेति, तजहा–दिट्ठतिय, पाडिस्सुइय, सामण्णोवणिवाइयं, लोगमज्झावसाणिय। अप्पेगइया बत्तीसविहं दिव्व णट्टविहि उवदसेति। अप्पेगइया उप्पयणिवय, णिवयउप्पय सकुचियपसारिय जाव भतसभतणाम दिव्वं णट्टविहिं उवदसति। अप्पेगइया तंडवेंति, अप्पेगइया लासेंति, अप्पेगइया पीणेंति, एवं बुक्कारंति अप्फोडेंति, वग्गति, सीहणाय णदति, अप्पेगइया सव्वाइ करेंति। अप्पेगइया हयहेसियं एव हत्थिगुलगुलाइय, रहघणघणाइय, अप्पेगइया तिण्णिवि, अप्पेगइया अच्छोलति, अप्पेगइया पच्छोलति, अप्पेगइया तिवइ छिंदति पायदद्दरयं करेंति, भूमि चवेडे दलयति, अप्पेगइया महया सद्देण रावेंति एव सजोगा विभासियव्वा। अप्पेगइया हक्कारेंति, एव पुक्कारेंति थक्कारेंति ओवयति उप्पयति परिवयति जलति तवति पयवति, गज्जति विज्जुयायति वासिंति। अप्पेगइया देवुक्कलिय करेंति एव देवकहकहग करति। अप्पेगइया विकियभूयाइ रूवाइ विउव्वित्ता पणच्चति, एवमाइ विभासिज्जा जहा विजयस्स जाव सव्वओ समता आहावेंति परिधावेंति। २६॥

अर्थ—जब तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक किया जाता है

उस समय सब देव बड़े प्रसन्न होते हैं। कितनेक देव हाथों में छत्र, चामर, धूप के कूड़छे, फूल और सुगन्धित पदार्थ लेकर तथा शक्रेन्द्र वज्र, और ईशानेन्द्र त्रिशूल लेकर एवं अन्य देव दोनों हाथ जोड़ कर तीर्थङ्कर भगवान् के सन्मुख खड़े रहते हैं। कितनेक देव पण्डक वन की सफाई करते हैं और कितनेक देव पानी का छिड़काव करते है तथा चन्दन आदि का लेप करते है। इस प्रकार पण्डक वन को साफ, पवित्र और सुगन्धित बना देते हैं। भिन्न-भिन्न स्थानों से लाई हुई चन्दन आदि वस्तुओं का इस तरह ढेर करते हैं जैसे मानो क्रमशः दूकाने लगाई हों। इस प्रकार जगह जगह चन्दन आदि सुगन्धित पदार्थों का ढेर करते पण्डक वन को गन्धवट्टी के समान अत्यन्त सुगन्धित बना देते हैं। कितनेक देव चाँदी, सोना, रत्न, वज्र, आभूषण, पत्र, पुष्प, फल, बीज, माला, गन्ध, हिङ्गलू आदि वर्ण और सुगन्धित पदार्थों की वृष्टि करते है। कितनेक देव परस्पर में चाँदी, चूर्ण एवं माङ्गलिक पदार्थ देते हैं। अथवा इन पदार्थों से अपने शरीर को सुशोभित करते हैं। कितनेक देव (१) तत-वीणा आदि, (२) वितत-ढोल आदि, (३) घन-ताल आदि, (४) झुषिर-बाँसुरी आदि ये चार प्रकार के बाजे बजाते है। कितनेक देव (१) उत्क्षिप्त, (२) पादबद्ध, (३) मन्दाक और (४) रोचितावसान ये चार प्रकार के गाने गाते है। कितनेक देव (१) आञ्चत (२) द्रुत (३) आरभट और (४) भसोल यह चार प्रकार के नाच करते हैं। कितनेक देव (१) दार्ष्टान्तिक, (२) प्रातिश्रुतिक, (३) सामन्तोपनिपातिक या सामान्यतो विनिपातिक और (४) लोकमध्यावसानिक—यह चार प्रकार का अभिनय करते है। जिस प्रकार भगवान् महावीर स्वामी के सामने सूर्याभदेव ने बत्तीस प्रकार के नाटक बताये थे, वैसे ही कितनेक देव बत्तीस प्रकार के नाटक बतलाते है। कितनेक देव नीचे गिरते है; उछलते है, अपने

अङ्गों को सकुचित और विस्तृत करते हैं। कितनेक देव भ्रान्त सम्भ्रान्त नामक एसा दिव्य नाटक दिखलाते हैं जिसे देख कर दर्शक लोग आश्चर्य म पड कर भ्रान्तसम्भ्रान्त बन जाते हैं। कितनेक देव ताण्डव नृत्य और अभिनयशून्य लासिक नृत्य करते हैं। कितनेक देव अपने शरीर को स्थूल बनाते हैं। कितनेक देव थूत्कार और आस्फोटन आदि करते हैं। कितनेक देव पहलवान की तरह अपनी भुजाओं को ठोकते हैं और परस्पर मल्लयुद्ध करते हैं। कितनेक देव सिंहनाद करते हैं, घोड़े की तरह हिनहिनाहट, हाथी की तरह गुलगुलाहट और रथ की तरह घनघनाहट शब्द करते हैं। कितनेक देव पहलवान की तरह उछलते हैं, आनन्दित होकर परस्पर चपेटा और पीठ में घूसा मारते हैं। कितनक देव पैरों से भूमि का ताडित करते हैं हाथो से भूमि पर चपेटा मारते ह। कितनेक देव हकार शब्द, पूत्कार शब्द और थक्क थक्क शब्द करते हैं। कितनेक देव खुशी के मारे ऊपर उछलते हे, नीचे गिरते हैं तिर्छे गिरते हैं। कितनेक देव ज्वाला के समान तथा तप्त और दीप्त अङ्गार के समान रूप बनाते हैं। कितनेक देव मेघ के समान गर्जना करते हैं, बिजली के समान चमकते और वर्षा करते हैं। कितनेक देव आनन्द से कहकह, दुहुदुहु और हुहु शब्द करते हैं। कितनेक देव विविध प्रकार का रूप बना कर नाचते हैं। कितनेक देव खुशी के मारे इधर उधर दौडते हैं। इस प्रकार जीवाजीवाभिगम सूत्र में जैस विजयदेव के अभिषेक का वर्णन किया है उसी प्रकार सारा वर्णन यहाँ भी समझ लेना चाहिये ॥२६॥

तए ण से अच्चुइंदे सपरिवारे सामिं तेण महया महया अभिसेएण अभिसिंचइ अभिसिंचित्ता करयलपरिग्गहिय जाव मत्थए अंजलि कट्टु जएण विजएणं वद्धावेइ, वद्धा-

त्तिा ताहिं इट्ठाहिं जाव जयजयसद्दं पउंजइ, पउंजित्ता जाव पंम्हलसुकुमालाए सुरभिए गंधकासाईए गायाइं लूहेइ, लूहित्ता एवं जाव कप्परुक्खगं विव अलंकियविभूसियं करेइ, करित्ता जाव णट्टविहिं उवदंसेइ, उवदंसित्ता अच्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्छरसातंडुलेहिं भगवओ सामिस्स पुरओ अट्ठट्ठमंगलगे आलिहइ, तंजहा—

दप्पण भद्दासणं वद्धमाण,
वरकलसमच्छ सिरिवच्छा ।
सोत्थिय णंदावत्ता,
लिहिया अट्ठट्ठ मंगलगा ॥ १ ॥

लिहिऊण करेइ उवयारं । किं ते ? पाडलमलियचंपग सोगपुण्णागचूअमंजरि - णवमालिय-बउल - तिलयकणवीर कुंदकुज्जग कोरंटपत्तदमणगवरसुरभिगंधगंधियस्स कयग्ग-हगहियकरयलपब्भट्ठ विप्पमुक्कस्स दसद्धवण्णस्स कुसुम-णियरस्स तत्थचित्तं जण्णुस्सेहप्पमाणमित्तं ओहिणियरं करेइ, करित्ता चंदप्पहरयणवइरवेरुलियविमलदंडं कंचण-मणिरयणभत्ति चित्तं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्क धूवगंधुत्तमाणुविद्धं धूमवट्टिं विणिम्मुअंतं वेरुलियमयं कडुच्छुअं पग्गहित्तु पयएणं धूवं दहइ, दाऊण जिणवरिं-दस्स सत्तट्ठपयाइं ओसरित्ता दसंगुलियं अंजलिं करिअ

मत्थयम्मि पयओ अट्ठसएहिं विसुद्धगंथजुत्तेहिं महावित्तेहिं अपुणरुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं संथुणइ संथुणित्ता वाम जाणुं अंचेइ अंचित्ता जाव करयलपरिग्गहियं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी णमोत्थुणं ते सिद्धबुद्धणीरयसमणसामाहियसमत्तसमजोगिसल्लगत्तणणिब्भयणीरागदोसणिम्ममणिस्सग णिस्सल्लमाणमूरणगुणरयणसीलसागरमणंतमप्पमेयभविय--धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टी, णमोत्थुणं ते अरहओ त्तिकट्टु वंदइ णमंसइ वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे जाव पज्जुवासइ । एवं जहा अच्चुयस्स तहा जाव ईसाणस्स भाणियव्वं । एवं भवणवइवाणमंतरजोइसिया य सूरपज्जवसाणा सएणं परिवारेणं पत्तेयं पत्तेयं अभिसिंचइ ॥३०॥

अर्थ—इसके बाद अच्युतेन्द्र उस महान् अभिषेक योग्य सामग्री से तीर्थङ्कर भगवान् का अभिषेक करते हैं। अभिषेक करके दोनों हाथ जोड़ कर जय विजय शब्द से बधाते हुए कहते हैं कि हे भगवन् ! आपकी जय हो, विजय हो । फिर अत्यन्त कोमल और सुगन्धित कषायरङ्ग के वस्त्र से भगवान के शरीर को पोंछते हैं। पोंछने के पश्चात् उनके शरीर को अलंकृत और विभूषित करते हैं। तत्पश्चात् नृत्यविधि बतलाते हैं। फिर स्वच्छ रजतमय शुद्ध चाँवलों से तीर्थङ्कर भगवान् के सामने (१) दर्पण, (२) भद्रासन, (३) वर्द्धमान, (४) श्रेष्ठ कलश, (५) मत्स्य, (६) श्रीवत्स, (७) स्वस्तिक और (८) नन्दावर्त्त ये आठ माङ्गलिक चिन्ह लिखते हैं। तत्पश्चात् पाटल, मल्लिका, चम्पा, अशोक और पुन्नाग वृक्षों के

फूल, आम मञ्जरी, नवमालिका, वकुल, तिलक, कर्णवीर, कुन्द, कुब्जक आदि वृक्षों के फूल और कोरंट वृक्ष के पत्ते आदि सब सुगन्धित पदार्थों एवं उपरोक्त पाँच वर्ण के फूलों का घुटने परिमाण ढेर करते हैं, किन्तु जो फूल हाथ से नीचे गिर पड़ते हैं, उन्हें उसमें शामिल नहीं करते हैं। उपरोक्त इन पाँच वर्ण के फूलों से तीर्थङ्कर भगवान् की यथा योग्य सेवा करते हैं। तत्पश्चात् चन्द्रकान्त मणि, रत्न, वज्र और वैडूर्य मणि से बनी हुई डांडी वाले तथा सुवर्ण मणि और रत्नों की रचना यानी मीनाकारी से चित्रित वज्रमय कुड़छे को ग्रहण करते हैं उसमे कालागुरु, श्रेष्ठ कुन्दुरुक्क आदि महासुगन्धित पदार्थ डाल कर आदरपूर्वक तीर्थङ्कर भगवान् को धूप देते हैं। फिर दूसरों के दर्शन मे बाधा न पड़े इस दृष्टि से सात-आठ पैर पीछे हट कर मस्तक पर अञ्जलि करके पुनरुक्ति दोष रहित, अर्थयुक्त एवं शुद्ध पाठ युक्त एक सौ आठ महान् श्लोकों से शुद्ध उच्चारण पूर्वक स्तुति करते हैं। फिर बाएँ घुटने को खड़ा करके और दाहिने घुटने को जमीन पर टेक कर, दोनों हाथ जोड़ कर और मस्तक पर अञ्जलि करके इस प्रकार स्तुति करते है—हे सिद्ध! बुद्ध! कर्मरजरहित! श्रमण! समाधिस्थ चित्त वाले, कृतकृत्य! सम्यक् प्रकार से आप्त! सम्यक् योग वाले! शल्यों का विनाश करने वाले! निर्भय! राग द्वेष रहित! ममत्व रहित! सर्वसङ्ग रहित! मान का मर्दन करने वाले! सर्व गुणों में रत्न के समान ब्रह्मचर्य के सागर! अनन्त ज्ञान के धारक! अप्रमेय! भव्य! धर्म रूप चक्र से चारगति का अन्त करने वाले धर्मचक्रवर्तिन्! हे अरिहन्त भगवन्! आपको नमस्कार हो! इस प्रकार स्तुति करते हुए वन्दना नमस्कार करते हैं। वन्दना नमस्कार करके न अति दूर और न अति नजदीक किन्तु उचित स्थान पर स्थित होकर सुश्रूषा करते हुए पर्युपासना करते हैं।

इस प्रकार जैसे अच्युतेन्द्र का कथन किया है वैसे ही ईशानेन्द्र तक भी कह देना चाहिये अर्थात् ईशानेन्द्र से लेकर अच्युतेन्द्र पर्यन्त नौ इन्द्र इसी तरह अभिषेक करते हैं और इसी प्रकार भवनपति देवों के बीस इन्द्र, वाणव्यन्तर देवों के बत्तीस इन्द्र और ज्योतिषी देवों के दो इन्द्र अभिषेक करते हैं अर्थात् शक्रेन्द्र के सिवाय त्रेसठ इन्द्र इस प्रकार उपरोक्त रीति से तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक करते हैं ॥३०॥

तए णं से ईसाणे देविंदे देवराया पञ्च ईसाणे विउव्वइ, विउव्वित्ता एगे ईसाणे भगवं तित्थयरं करयलसंपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे, एगे ईसाणे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, दुवे ईसाणा उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति, एगे ईसाणे पुरओ सूलपाणी चिट्ठइ ॥३१॥

अर्थ—तत्पश्चात् ईशानेन्द्र देवेन्द्र देवराजा विक्रिया द्वारा अपने पाँच रूप बनाते हैं। एक ईशानेन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् को हथेली पर धर कर पूर्व की तरफ मुँह करके सिंहासन पर बैठते हैं। एक ईशानेन्द्र पाठ पीछे खड़ा रह कर छत्र धारण करता है। दो ईशानेन्द्र दोनों तरफ चामर ढोलते हैं और एक ईशानेन्द्र हाथ में त्रिशूल लेकर सामने खड़े रहते हैं ॥३१॥

तए णं से सक्के देविंदे देवराया आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एसो वि तह चेव अभिसेयआणत्तिं देइ, ते वि य तह चेव करेंति। तए णं से सक्के देविंदे देवराया भगवओ तित्थयरस्स चउद्दिसिं चत्तारि धवलवसभे

विउव्वेइ, सेए संखदलविमलणिम्मलदधिघणगोखीरफेणरयय-णिगरप्पगासे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे, पडिरूवे, तए णं तेसिं चउण्हं धवलवसभाणं अट्ठहिं सिंगेहिंतो अट्ठ तोयधाराओ उड्ढं वेहासं उप्पयंति, उप्पइत्ता एगओ मिलायंति, मिलाइत्ता भगवओ तित्थयरस्स मुद्धाणंसि-णिवयंति। तए णं से सक्के देविंदे देवराया चउरासीईए सामाणियसाहस्सीहिं एयस्स वि तहेव अभिसेओ भणियव्वो जाव णमोत्थुणं ते अरहओ तिकट्टु वंदइ णमंसइ जाव पज्जुवासइ ॥३२॥

अर्थ—जब ईशानेन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् को अपने करतल में लेकर सिंहासन पर बैठ जाते हैं तब शक्रेन्द्र जो कि अब तक तीर्थङ्कर भगवान् को अपने करतल में लेकर सिंहासन पर बैठे हुए थे, वे मुक्तहस्त होकर अपने आभियोगिक देवों को बुलाते हैं, उन्हें बुला कर अच्युतेन्द्र के समान ही अभिषेक सामग्री लाने के लिए आज्ञा देते हैं। उनकी आज्ञा पाकर आभियोगिक देव अभिषेक सामग्री लाकर शक्रेन्द्र के सामने रखते हैं।

तब वे शक्रेन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् के चारों दिशाओं में चार सफेद बैलों का रूप बना कर खड़ा करते हैं। वे बैल शंख के चूर्ण समान, अत्यन्त निर्मल दधिपिण्ड के समान और गाय के दूध के समान और गाय के दूध के फेन के समान एवं चाँदी के समूह के समान सफेद होते है तथा मन को प्रसन्न करने वाले दर्श-नीय, अभिरूप और प्रतिरूप होते है।

तत्पश्चात् उन चार बैलों के आठ सींगों से आठ जलधा-राएँ निकलती हैं। वे फव्वारे के समान आकाश में ऊपर उछलती

हैं और फिर सभी एक साथ मिल कर तीर्थङ्कर भगवान के मस्तक पर गिरती हैं तब वे शक्रेन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् का अभिषेक करते हैं। इनके अभिषेक का वर्णन अच्युतेन्द्र के समान ही जानना चाहिए यावत् वे तीर्थङ्कर भगवान् को वन्दना नमस्कार करके पर्युपासना करते हैं ॥३२॥

तए णं से सक्के देविंदे देवराया पंचसक्के विउव्वइ, विउव्वित्ता एगे सक्के भगवं तित्थयरं करयलसपुडेणं गिण्हइ, एगे सक्के पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, दुवे सक्का उभओ पासिं चामरुक्खेवं करेंति, एगे सक्के वज्जपाणी पुरओ पगड्ढइ ॥३३॥

अर्थ—जब चौसठ ही इन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् का जन्माभिषेक कर चुकते हैं तब शक्रेन्द्र अपने पाँच रूप बनाते हैं। एक शक्रेन्द्र तीर्थङ्कर भगवान् को अपनी हथेली पर उठाते हैं, एक शक्रेन्द्र पीठ पीछे रह कर छत्र धारण करते हैं, दो शक्रेन्द्र दोनों तरफ चामर ढोलते हैं और एक शक्रेन्द्र हाथ में वज्र लेकर तीर्थङ्कर भगवान् के सामने खड़े रहते हैं ॥३३॥

(जननी के निकट)

तए णं से सक्के चउरासीईए सामाणियसाहस्सीहिं जाव अण्णेहि य बहूहिं भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणि- एहिं देवेहिं देवीहिं य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए जाव णाइयरवेणं ताए उक्किट्ठाए दिव्वाए देवगईए जेणेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरे जेणेव जम्मणभवणे जेणेव तित्थयरमाया य तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता

भगवं तित्थयरं माउए पासे ठवेइ, ठवित्ता तित्थयरपडिरूवगं पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता ओसोवणिं पडिसाहरइ, पडिसा-हरित्ता एगं महं खोमजुयलं कुंडलजुयलं च भगवओ तित्थ-यरस्स उस्सीसगमूले ठवेइ, ठवित्ता एगं महं सिरिदामगंडं तवणिज्जलंबूसगं सुवण्णपयरगमंडियं णाणामणिरयणविविह-हारद्धाहारउवसोहियसमुदयं भगवओ तित्थयरस्स उल्लोयंसि णिक्खिवइ। तए णं भगवं तित्थयरे अणिमिसाए दिट्ठीए-पेहमाणे पेहमाणे सुहंसुहेणं अभिरममाणे चिट्ठइ ॥२४॥

अर्थ—तब शक्रेन्द्र अपने चौरासी हजार सामानिक देव और दूसरे बहुत से भवनपति देव वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव और देवियों के साथ उत्कृष्ट दिव्य देवगति से तीर्थ-ङ्कर भगवान् के जन्म नगर में आते हैं। फिर तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन में आकर तीर्थङ्कर भगवान् की माता के पास उन्हें रखते हैं और उनके प्रतिरूपक को अर्थात् जब जन्माभिषेक करने के लिए तीर्थङ्कर भगवान् को मेरु पर्वत पर ले गये थे, तब उनका रूप बना कर जो प्रतिरूपक उनकी माता के पास रखा था उसे हटा लेते हैं और इसी प्रकार तीर्थङ्कर भगवान् की माता को जो अव-स्वापिनी निद्रा देकर निद्रित कर दिया था, उस अवस्वापिनी निद्रा को भी दूर कर देते हैं। फिर तीर्थङ्कर भगवान् के सिर के तकिये के नीचे एक महान् क्षोम युगल और एक कुण्डलयुगल यानी कुण्डलों का जोड़ा रखते हैं। फिर तीर्थङ्कर भगवान् की दृष्टि में आवे उस तरह से उनकी दृष्टि के सामने सुवर्णमय, सुवर्ण से मण्डित, नाना मणि रत्न एवं विविध हार और अर्द्धहारों के समूह से सुशोभित एक महान् श्रीदामगंड यानी शोभायुक्त विचित्र रत्नों

का बना हुआ गोल दड़ा रखते हैं। तीर्थङ्कर भगवान् उस दड़े को अनिमेष दृष्टि से देखते हुए और सुख पूर्वक क्रीड़ा करते हुए माता के पास शयन किये हुए रहते हैं ॥३४॥

(जिनमाता की सेवा)

तए ण से सक्के देविंदे देवराया वेसमण देवं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! वत्तीसं हिरण्णकोडीओ वत्तीस सुवण्णकोडीओ वत्तीस णदाइं वत्तीस भद्दाइ सुभगे सुभगरूवजुव्वणलावण्णे य भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहराहि साहरित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।

तए ण से वेसमणे देवे सक्केण एव वुत्ते समाणे विणएण वयण पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जभए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एव वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! वत्तीस हिरण्णकोडीओ जाव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहरह, साहरित्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह। तए ण ते जभगा देवा वेसमणेण देवेण एव वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ जाव खिप्पामेव वत्तीस हिरण्णकोडीओ जाव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणभवणंसि साहरंति, साहरित्ता जेणेव वेसमणे देवे तेणेव जाव पच्चप्पिणंति। तए ण से वेसमणे देवे जेणेव सक्के देविंदे देवराया जाव पच्चप्पिणइ ॥३५॥

अर्थ—तत्पश्चात् वे शक्रेन्द्र वैश्रमण देव को बुला कर कहते हैं कि हे देवानुप्रिय! तुम शीघ्र ही बत्तीस करोड़ हिरण्य, बत्तीस करोड़ सोनैया और बत्तीस सुन्दर नन्दासन तथा बत्तीस सुन्दर भद्रासनों का संहरण करके तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन में रखो। जब यह कार्य हो जाय तब आकर मुझे वापिस सूचना करो।

वैश्रमण देव शक्रेन्द्र की उपरोक्त आज्ञा को विनयपूर्वक सुन कर शिरोधार्य करते है। तत्पश्चात् वह वैश्रमण देव जृम्भक देवों को बुला कर कहते हैं कि हे देवानुप्रियो! तुम शीघ्र ही बत्तीस करोड़ हिरण्य, बत्तीस करोड़ सोनैया, और बत्तीस सुन्दर नन्दासन तथा बत्तीस सुन्दर भद्रासनों का संहरण करके तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन में रखो। यह कार्य करके मुझे वापिस सूचना दो।

वैश्रमण देव की उपरोक्त आज्ञा को सुन कर जृम्भक देव बड़े प्रसन्न होते हैं। तत्पश्चात् वे शीघ्र ही बत्तीस करोड़ हिरण्य, बत्तीस करोड़ सोनैया और बत्तीस सुन्दर नन्दासन तथा बत्तीस सुन्दर भद्रासनों का संहरण करके तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म भवन में रखते हैं। तत्पश्चात् वे जृम्भक देव वैश्रमण देव के पास आकर उन्हे सूचना देते हैं। इसके बाद वैश्रमण देव शक्रेन्द्र के पास आकर उनकी आज्ञा उन्हें वापिस सोंपते हैं अर्थात् उन्हे यह सूचित करते हैं कि जिस कार्य के लिये आपने मुझे आज्ञा दी थी, वह कार्य पूरा हो गया है ॥२५॥

तए णं से सक्के देविंदे देवराया आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी–खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरंसि सिंघाडग

जाव महापहेसु महया महया सद्देण उग्घोसेमाणा एवं वयह-इंदि ! सुणंतु भवतो बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसिय-वेमाणिया देवा य देवीओ य जे ण देवाणुप्पिया ! भगवओ तित्थयरस्स तित्थयरमाऊए उवरिं असुह मण पहारेइ, तस्स ण अज्जगमंजरिआ इव सयहा मुद्धाण फुट्टउ त्तिकट्टु घोसण घोसेह, घोसइत्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणह । तएण ते आभिओगिआ देवा जाव एव देवोत्ति आणाए पडिसु-णति, पडिसुणित्ता सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अतियाओ पडिणिक्खमति, पडिणिक्खमित्ता खिप्पामेव भगवओ तित्थयरस्स जम्मणणयरसि सिंघाडग जाव एव वयासी–इदि ! सुणतु भवतो बहवे भवणवइ-वाणमतर-जोइसिय-वेमाणिया देवा य देवीओ य जे ण देवाणुप्पिया ! तित्थ-यरस्स तित्थयरमाऊए वा उवरिं असुह मण पहारेइ, तस्स ण अज्जगमंजरिआ इव सयहा मुद्धाण फुट्टउ त्तिकट्टु घोसणं घोसेंति, घोसित्ता एयमाणत्तिय पच्चप्पिणति ॥३६॥

अर्थ—इसके पश्चात शक्रेन्द्र आभियोगिक देवों को बुलाते हैं और बुला कर इस प्रकार कहते हैं कि हे देवानुप्रियो ! तुम तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म नगर में जाकर नगर के सभी चौराहों पर, सभी छोटे बड़े मार्गों पर एवं राजमार्गों पर इस प्रकार उद्-घोषणा करो कि अहो भवनपति वाणव्यन्तर ज्योतिषी और वैमा निक देव और देवियो ! आप सब सुनें,— आप में से जो कोई देव या देवी तीर्थङ्कर भगवान् और तीर्थङ्कर भगवान की माता के ऊपर

खोटा विचार करेगा, उनका बुरा चिन्तन करेगा तो उसका मस्तक ताड़ वृक्ष की मञ्जरी के समान सौ टुकड़े करके उड़ा दिया जायगा। ऐसी उद्घोषणा करके यह मेरी आज्ञा मुझे वापिस सौंपो अर्थात् मेरी आज्ञानुसार कार्य करके मुझे वापिस सूचित करो।

तत्पश्चात् वे आभियोगिक देव शक्रेन्द्र की आज्ञा को विनयपूर्वक सुनते है एवं शिरोधार्य करते हैं। फिर शक्रेन्द्र के पास से निकल कर वे तीर्थङ्कर भगवान् के जन्मनगर में आते हैं। वहाँ आकर नगर के चौराहों पर, राजमार्गों पर यावत् छोटे बड़े सभी रास्ते पर शक्रेन्द्र की आज्ञानुसार उद्घोषणा करते हुए कहते हैं कि अहो! भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव और देवियां! आप सब सुनें-आप में से कोई देव या देवी तीर्थङ्कर भगवान् और उनकी माता का किसी भी प्रकार से बुरा चिन्तन करेगा तो उसका मस्तक ताड़वृक्ष की मञ्जरी के समान सैकड़ों टुकड़े करके उड़ा दिया जायगा।' ऐसी उद्घोषणा करके वे आभियोगिक देव शक्रेन्द्र के पास आकर उनको सूचित करते हैं कि हे स्वामिन्! हमने आपकी आज्ञानुसार तीर्थङ्कर भगवान् के जन्म नगर में उद्घोषणा कर दी है ॥३६॥

तए णं ते बहवे भवणवइवाणमंतरजोइसियवेमाणिया देवा भगवओ तित्थयरस्स जम्मणमहिमं करेंति, करित्ता जेणेव णंदीसर दीवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अट्ठाहियाओ महामहिमाओ करेंति, करित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूआ तामेव दिसिं पडिगया ॥ ३७ ॥

अर्थ—इसके पश्चात् वे सभी भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिषी और वैमानिक देव तीर्थङ्कर भगवान् का जन्म महोत्सव करके नन्दीश्वर द्वीप में आते हैं, वहाँ आकर अष्टाह्निका महोत्सव करते हैं। आष्टाह्निका महोत्सव करके वे सभी अपने अपने स्थान को वापिस चले जाते हैं ॥२७॥

६-तीर्थंकरों के नाम

वर्त्तमान चौवीसी के तीर्थङ्करों के नाम तथा उनके पूर्वभव के नाम बताते है:—

जंवुद्दीवे णं दीवे भारहे वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसं तित्थयरा होत्था। तंजहा—उसभ अजिय संभव अभिणंदण सुमइ पउमप्पह सुपास चंदप्पह सुविहि पुप्फदंत सीयल सिज्जंस वासुपुज्ज विमल अणंत धम्म संति कुंथु अर मल्लि मुणिसुव्वय णमि णेमि पास वद्धमाणो य।

एएसिं चउवीसाए तित्थयराणं चउव्वीसं पुव्वभवया णामधेज्जा होत्था। तंजहा—

पढमेत्थ वइरणाभे, विमले तह विमलवाहणे चेव।
तत्तो य धम्मसीहे, सुमित्त तह धम्ममित्ते य ॥ १ ॥
सुन्दरवाहू तह दीहवाहू, जुयवाहू लट्ठवाहू य।
दिण्णे य इंददत्ते, सुन्दर माहिंदरे चेव ॥ २ ॥
सीहरहे मेहरहे वप्पी य सुदंसणे य वोद्धव्वे।
तत्तो य णंदणे खलु सिहगिरी चेव वीसइमे ॥ ३ ॥
अदीणसत्तू संखे, सुदंसणे णंदणे य वोद्धव्वे।
इमीसे ओसप्पिणीए एए, तित्थयराणं तु पुव्वभवा ॥४॥

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थङ्कर हुए थे। उनके नाम इस प्रकार हैं—१ ऋषभ देव। २ अजितनाथ। ३ सम्भवनाथ। ४ अभिनन्दन। ५ सुमतिनाथ। ६ पद्मप्रभ। ७ सुपार्श्वनाथ। ८ चन्द्रप्रभ। ९ सुविधिनाथ, दूसरा नाम पुष्पदन्त। १० शीतलनाथ। ११ श्रेयांसनाथ। १२ वासुपूज्य। १३ विमलनाथ। १४ अनन्तनाथ। १५ धर्मनाथ। १६ शान्तिनाथ। १७ कुन्थुनाथ। १८ अरनाथ। १९ मल्लिनाथ। २० मुनिसुव्रत स्वामी। २१ नमिनाथ। २२ नेमिनाथ। २३ पार्श्वनाथ। २४ वर्द्धमान स्वामी, दूसरा नाम महावीर स्वामी। ये चौबीस तीर्थङ्कर हुए हैं।

(आगामी चौबीसी)

भरतक्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी के चौबीस तीर्थङ्करों के नाम गिनाते हुए कहा गया है —

जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगामिस्साए उस्सप्पिणीए चउव्वीसं तित्थयरा भविस्सति। तंजहा—

महापउमे सूरदेवे, सुपासे य सयपभे।
सव्वाणुभूई अरहा, देवस्सुए य होक्खइ ॥१॥
उदए पेढालपुत्ते य, पोट्टिले सयकित्ति य।
मुणिसुव्वए य अरहा, सव्वभावविऊ जिणे ॥२॥
अममे णिक्कसाए य णिप्पुलाए य णिम्ममे
चित्तउत्ते समाही य, आगामिस्सेण होक्खइ ॥३॥

संवरे जसोधरे अणियट्टी य विजए विमलेति य ।
देवोववाए अरहा, अणंतविजए इय ॥४॥
एएं वुत्ता चउव्वीसं, भरहे वासम्मि केवली ।
आगामिस्सेण होक्खंति, धम्मतित्थस्स देसगा ॥५॥

—समवायांग सूत्र समवाय १५९

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में चौबीस तीर्थङ्कर होंगे। उनके नाम इस प्रकार होंगे—१ महापद्म। २ सूर्य देव। ३ सुपार्श्व। ४ स्वयंप्रभ। ५ सर्वानुभूति। ६ देवश्रुत। ७ उदय। ८ पेढालपुत्र। ९ पोट्टिल। १० शतकीर्ति। ११ मुनिसुव्रत। १२ अमम। १३ निष्कषाय। १४ निष्पुलाक। १५ निर्मम। १६ चित्रगुप्त। १७ समाधि। १८ संवर १९ यशोधर। २० अनिर्वर्तिक। २१ विजय। २२ विमल। २३ देवोपपात। २४ अनन्तविजय।

ये धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले धर्मोपदेशक चौबीस तीर्थङ्कर इस भरत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में होवेंगे।

(ऐरवतक्षेत्र के तीर्थंकर)

ऐरवत क्षेत्र की वर्त्तमान चौबीसी के तीर्थङ्करों के नाम गिनाते हुए कहा है:—

जंबुद्दीवे दीवे एरवए वासे इमीसे ओसप्पिणीए चउव्वीसं तित्थयरा होत्था तंजहा—

चंदाणणं सुचंदं अग्गिसेणं च णंदिसेणं च ।
इसिदिण्णं वलहारिं वंदिमो सोमचंदं च ॥१॥

वंदामि जुत्तिसेण अजियनेण तहेय सिवसेणं ।
बुद्ध च देवसम्मं सययं णिक्खित्त सत्थं च ।२।
असजलं जिणसहं वंदे य अणतयं अमियणाणीं ।
उवसत च धुयरयं वदे खलु गुत्तिसेण च ॥३॥
अइपास च सुपासं देवेसरवंदिय च मरुदेवं ।
णिव्वाण गय च धर, खीणदुह सामकोट्ठ च ॥४॥
जियरागमग्गिसेण वदे खीणरायमग्गिउत्तं च ।
वोक्कसिय पिज्जदोस वारिसेण गय सिद्धि ॥५॥

—समवायाग सूत्र समवाय १५६

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के ऐरवतक्षेत्र में इस अवसर्पिणी काल मे चौवीस तीर्थङ्कर हुए थ । उनके नाम इस प्रकार है—१ चन्द्रानन । २ सुचन्द्र । ३ अग्निसेन । ४ नन्दीसेन । ५ ऋपिदिएण (ऋपिदत्त) । ६ वलधारी ७ सोमचन्द्र को हम वन्दना करते हैं । ८ युक्तिसेन (अपरनाम दीघबाहु या दीर्घसेन) ६ अजित सेन (अपरनाम शतायु) १० शिवसेन (अपरनाम सत्यसेन) ११ ज्ञानी देवशर्मा (अपरनाम श्रेयांस) इनको हम सदा वन्दना करते हैं ।

१३ असजलन । १४ जिनवृपम (अपरनाम स्वयजल) १५ अमितज्ञानी यानी सर्वज्ञ अनन्तक (अपरनाम सिंहसेन) १६ उपशान्त और कमरज से रहित गुप्तिसेन को हम वन्दना करते हैं ।

१७ अति पार्श्व । १८ सुपार्श्व । १६ देवेश्वरों द्वारा वन्दित मरुदेव २० निर्वाण को प्राप्त धर । २१ दुखों का विनाश करन

वाले श्याम कोष्ठ। २२ राग द्वेष के विजेता अग्निसेन (अपरनाम महासेन)। २३ रागद्वेष का क्षय करके सिद्धिगति को प्राप्त हुए वारिसेन। इन चौबीस तीर्थङ्करों को मैं वन्दना करता हूँ।

ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी के चौबीस तीर्थङ्करों के नाम—

जंबुद्दीवे एरवए वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए चउव्वीसं तित्थयरा भविस्संति। तंजहा—

सुमंगले य सिद्धत्थे, णिव्वाणे य महाजसे।
धम्मज्झए य अरहा आगमिस्साण होक्खइ ।१।
सिरिचंदे पुप्फकेऊ, महाचंदे य केवली।
सुयसागरे य अरहा, आगमिस्साण होक्खइ ।२॥
सिद्धत्थे पुण्णघोसे य, महाघोसे य केवली।
सच्चसेणे य अरहा आगमिस्साण होक्खइ ॥३॥
सूरसेणे य अरहा, महासेणे य केवली।
सव्वाणंदे य अरहा, देवउत्ते य होक्खइ ॥४॥
सुपासे सुव्वए अरहा, अरहे य सुकोसले।
अरहा अणंतविजए आगमिस्सेण होक्खइ ॥५॥
विमले उत्तरे अरहा, अरहा य महाबले।
देवाणंदे य अरहा, आगमिस्सेण होक्खइ ॥६॥
एए वुत्ता चउव्वीसं, एरवयम्मि केवली।
आगमिस्साण होक्खंति, धम्म तित्थस्स देसगा ॥७॥

—समवायांग सूत्र समवाय १५९

अर्थ—इस जम्बूद्वीप के ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में चौवोस तीर्थङ्कर होंगे। उनके नाम इस प्रकार होंगे—१ सुमङ्गल। २ सिद्धार्थ अथवा अर्थ सिद्ध। ३ निर्वाण। ४ महायश। ५ धर्मध्वज। ६ श्रीचन्द्र। ७ पुष्पकेतु। ८ महाचन्द्र। ९ श्रुतसागर। १० सिद्धार्थ अथवा अर्थसिद्ध। ११ पूर्णघोष। १२ महाघोष। १३ सत्यसेन। १४ सूर्यसेन। १५ महासेन। १६ सर्वानन्द। १७ देवपुत्र। १८ सुव्रत अथवा सुपार्श्व। १९ सुकोशल। २० अनन्त विजय। २१ विमल २२ उत्तर। २३ महाबल। २४ देवानन्द।

धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले और धर्मोपदेशक ये चौवीस तीर्थङ्कर ऐरवत क्षेत्र में आगामी उत्सर्पिणी काल में होवेंगे।

७-महावीर के सार्थक नाम

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के तीन नाम किस प्रकार हुए ? सो बताते हुए कहा हैः—

समणे भगवं महावीरे कासवगोत्ते । तस्स णं इमे तिण्णि णामधेज्जा एवं आहिज्जंति—अम्मा पिउसंतिए वद्धमाणे । सहसमुदिए (सह सम्मइए) समणे । भीमं भयभेरवं उरालं अचेलयं (अचलयं) परीसहं सहइ त्ति कट्टु देवेहिं से णामं कयं समणे भगवं महावीरे ।

—आचारांग अ० २४

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी काश्यप गोत्र के थे । उनके तीन नाम इस प्रकार कहे जाते हैंः—

(१) वर्द्धमान—माता पिता ने उनका नाम वद्धमाण-वर्द्धमान रखा था ।

(२) श्रमण—उनमें सहज स्वाभाविक रूप से अनेक गुण विद्यमान थे अतः स्वाभाविक गुणसमुदाय के कारण उनका दूसरा नाम समण-श्रमण हुआ ।

(३) महावीर—अचेलकता अर्थात नग्नता का कठोर परीषह-जिसे बड़े बड़े शक्तिशाली वीर पुरुष भी सहन नहीं कर सकते हैं, उसको तथा दूसरे भी भयंकर और कठोर परीषहों को भगवान् ने

समभाव पूर्वक सहन किया था। इस कारण से देवों ने उनका नाम "महावीर" रखा।

विवेचन-प्रश्न-परीषह किसे कहते हैं?

उत्तर—आपत्ति आने पर भी संयम में स्थिर रहने के लिए तथा कर्मों की निर्जरा के लिए जो शारीरिक और मानसिक कष्ट साधु साध्वियों को सहने चाहिए उन्हें परीषह कहते हैं। वे बाईस हैं—१ क्षुधा परीषह-भूख का परीषह। संयम की मर्यादानुसार निर्दोष आहार न मिलने पर साधु साध्वियों को भूख का कष्ट सहना चाहिए किन्तु संयम मर्यादा का उल्लंघन न करना चाहिए।

(२) पिपासा परीषह—प्यास का परीषह।

(३) शीत परीषह—ठण्ड का परीषह।

(४) उष्ण परीषह—गरमी का परीषह।

(५) दंशमशक परीषह—डांस और मच्छरों का तथा खटमल, चींटी, जूं आदि का परीषह।

(६) अचेल परीषह—शास्त्र मर्यादा के अनुसार परिमाण से अधिक वस्त्र न रखने से तथा आवश्यक वस्त्र न मिलने से होने वाला कष्ट।

(७) अरति परीषह—मन में अरति अर्थात उदासी से होने वाला कष्ट। संयम मार्ग में कठिनाइयों के आने पर उसमें मन न लगे और उसके प्रति अरति अरुचि उत्पन्न हो तो धैर्य पूर्वक उसमें मन लगाते हुए अरति को दूर करना चाहिए।

स्त्री परीषह— संसार में स्त्रियाँ पुरुषों के लिए महती आसक्ति का कारण हैं। यदि वे अब्रह्म सेवन के लिए साधु से प्रार्थना करें तो भी साधु अपने ब्रह्मचर्य व्रत में दृढ़ रहे। विचलित न हो यह अनुकूल परीषह है।

(९) चर्या परीषह—ग्रामानुग्राम विचरते हुए विहार सम्बन्धी कष्ट।

(१०)निषद्या परीषह – स्वाध्याय आदि करने की भूमि में किसी प्रकार का उपद्रव होने पर होने वाला कष्ट निषद्या परीषह है।

(११) शय्या परीषह—रहने के स्थान अथवा संस्तारक (बिछौना) की प्रतिकूलता से होने वाला कष्ट।

(१२) आक्रोश परीषह—किसी के द्वारा धमकाया जाने पर या फटकारा जाने पर दुर्वचनों से होने वाला कष्ट।

(१३) वधपरीषह—लकड़ी आदि से पीटा जाने पर होने वाला कष्ट।

(१४) याचना परीषह—भिक्षा मांगने से होने वाला कष्ट।

(१५) अलाभ परीषह—इच्छित वस्तु के न मिलने पर होने वाला कष्ट।

(१६) रोग परीषह—रोग के कारण होने वाला कष्ट।

(१७) तृणस्पर्श परीषह—सोने के लिये बिछाये हुए तिनकों पर (सूखे घास आदि पर) सोते समय या मार्ग में चलते समय तृण आदि पैर मे चुभ जाने से होने वाला कष्ट।

(१८) जल्ल परीषह—शरीर वस्त्र आदि में चाहे जितना मैल लग जाय किन्तु उद्वेग को प्राप्त न होना तथा स्नान की इच्छा न करना जल्ल (मल) परीषह कहलाता है।

(१९) सत्कार पुरस्कार परीषह–जनता द्वारा मान पूजा होने पर हर्षित न होते हुए समभाव रखना। गर्व न करना। मान पूजा के अभाव में खिन्न न होना सत्कार पुरस्कार परीषह है। (यह अनुकूल परीषह है)।

(२०) प्रज्ञा परीषह—अपने आप विचार करके किसी कार्य को करना प्रज्ञा है। प्रज्ञा होने पर उसका गर्व न करना प्रज्ञा परीषह है।

(२१) अज्ञान परीषह—अज्ञान के कारण होने वाला कष्ट।

(२२) दर्शन परीषह—सम्यग् दर्शन के कारण होने वाला परीषह अर्थात् दूसरे मत वालों की ऋद्धि तथा आडम्बर को देख कर भी अपने मत में दृढ रहना दर्शन परीषह है।

प्रश्न—'वर्द्धमान' शब्द का शब्दार्थ (व्युत्पत्त्यर्थ) क्या है?

उत्तर—वर्धत्ते इति वर्द्धमान, अर्थात् जो वृद्धि को प्राप्त हो एव जिसमे धन धान्यादि की वृद्धि हो उसे 'वर्द्धमान' कहते हैं।

जब भगवान् महावीर स्वामी का जीव त्रिशला रानी की कुक्षि में आया तब उनके पिता राजा सिद्धार्थ के राज्य की, लक्ष्मी की, धन धान्य की एव कुटुम्ब परिवार की सबकी वृद्धि हुई थी। इसलिए जब बालक का जन्म हुआ तब माता पिता ने उसका नाम 'वर्द्धमान' रखा था।

प्रश्न—'महावीर' शब्द का शब्दार्थ (व्युत्पत्त्यर्थ) क्या है?

उत्तर—

विदारयति यत्कर्म, तपसा च विराजते।

तपोवीर्येण युक्तश्च, तस्माद् वीर इति स्मृतः॥

अर्थात्—जो आठ कर्मों का विदारण करे, तप के द्वारा विशेष शोभित हो एव तप और वीर्य से युक्त हो उसे वीर कहते हैं। 'महांश्चासौ वीर इति महावीर' जो महान् वीर हो उसे महावीर कहते हैं।

प्रश्न—'श्रमण' शब्द का व्युत्पत्त्यर्थ क्या है ?

उत्तर—'श्रमु तपसि खेदे च' इस धातु से श्रमण शब्द बना है। इसकी व्युत्पत्ति इस प्रकार है:—

श्राम्यति तपस्यति इति श्रमणः। श्रममानयति पञ्चेन्द्रियाणि मनश्चेति श्रमणः (स्था० ४ उ० ४)

श्राम्यति संसार विषय खिन्नो भवति तपस्यतीति वा श्रमणः।' (धर्म० अधि० २)

अर्थ—जो तपस्या में रत रहे एवं तपस्या द्वारा शरीर और कर्मों को कृश करे उसे श्रमण कहते हैं।

जो पाँच इन्द्रिय, और मन को वश में रखे उसे श्रमण कहते हैं।

जो सांसारिक विषय वासना से खिन्न हो अर्थात् जो सांसारिक विषयवासना से विरक्त हो, उनका त्यागी हो तथा तपस्या में रत हो उसे श्रमण कहते हैं।
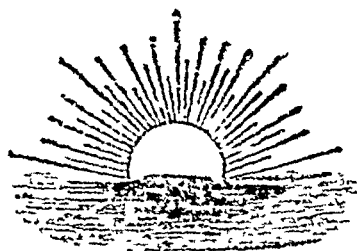
८—शरीर-सम्पदा
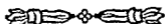
श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शरीर की विशिष्टता बताते हुए कहा गया है —

मज्झहत्थुस्सेहे, समचउरंससठाणसठिए वज्जरिसहणाराय संघयणे अणुलोमवाउवेगे कंकग्गहणी, कवोयपरिणामे सउणिपोसपिट्ठंतरोरुपरिणए पउमुप्पलगंधसरिसणिस्सासे सुरभिवयणे छवि णिरायंके उत्तमपसत्थअइसेयणिरुवमपले जल्लमल्लकलंकसेयरयदोसवज्जियसरीरे णिरुवलेवे छाया उज्जोइयंगमंगे ॥

—औपपातिक समवसरणाधिकार

अर्थ—श्रमण भगवान् महावीर स्वामी का शरीर सात हाथ ऊँचा, समचतुरस्र संस्थान से संस्थित, वज्रऋषभ नाराच संहनन युक्त, और अनुलोम-अनुकूल वायुवेग वाला था। कंक पक्षी के समान आहार का ग्रहण करने वाला और कपोत परिणाम था अर्थात् जिस प्रकार कपोतपक्षी के शरीर में कंकर का भी पाचन हो जाता है, उसी प्रकार उनके शरीर में भी रूक्ष आदि सभी प्रकार के आहार का पाचन हो जाता था। पीठ, अन्तर और ऊरु-जंघा पक्षी के समान थी एवं पर्णों के समान उनका शरीर भाग (गुह्य प्रदेश) अशुचि के लेप से रहित रहता था। उनके श्वास में कमल के समान सुगन्ध आती थी एवं उनका मुख सुरभित सुगन्धित था। कान्ति युक्त एवं निरातंक-रोगरहित था। उत्तम

प्रशस्त अतिशय वाला था। उनके शरीर का रक्त और मांस दूध के समान श्वेत था। जल्ल-पसीना, मैल, कलङ्क, रज-धूल से रहित था। सब दोषों से रहित था। निरुपलेप-लेप रहित था। उनके शरीर के समस्त अङ्ग उपाङ्ग कान्तियुक्त और उद्योत-प्रकाशयुक्त थे।

श्रमण भगवान् महावीर स्वामी के शरीर का शिखानख (चोटी से लेकर पैरों की अङ्गुलियों के नखों तक का) वर्णन करते हुए यों कहा गया है।

घणणिचयसुबद्धलक्खणुण्णयकूडागारणिभपिंडियग्ग-सिरए सामलिबोंडघणणिचयफोडियमिउविसयपसत्थसुहुम-लक्खण-सुगंध-सुंदर-भुयमोयगभिंगणीलकज्जलपहिट्ठभम-रगणणिद्धणिउरंबणिचियकुंचिय--पयाहिणावत्त--मुद्धसिरए, दाडिमपुप्फपगास-तवणिज्ज-सिरिस - णिम्मलसुणिद्धकेसंत - केसभूमि, घणणिचियछत्तागारुत्तमंगदेसे णिव्वणसमल-ट्ठमट्ठ-चंदद्धसमणिलाडे, उडुवइ-पडिपुण्ण-सोमवयणे, अल्लि-णपमाणजुत्तसवणे सुसवणे, पीणमंसल--कवोलदेसभाए आणामियचावरुइलकिण्हब्भराइतणुकसिणणिद्धभमुहे, अवदालियपुंडरियणयण, कोयासिय-धवलपत्तलच्छे, गरुला-यतउज्जुतुङ्गणासे, उवचिय-सिलप्पवालबिंबफल-सण्णिभा-धरोट्ठे, पंडुर-ससिसयलविमल णिम्मल-संख-गोखीर-फेण-कुंद-दगरयमुणालियाधवलदंतसेढी अखंडदंते, अफुडियदंते, अविरलदंते, सुणिद्धदंते, सुजायदंते, एगदंतसेढीविव अणेग-

दंते, हुयवहणिद्धतधोयतत्ततवणिज्जरत्ततलतालुजीहे, अव-
ट्ठियसुविभत्तचित्तमसुमल संठियपसत्थ-सद्दूलविउलहणुए,
चउरंगुलसुप्पमाणे कंबुवर-सरिसगीवे, वरमहिसवराहसिंह-
सद्दूल उसभ णागवर-पडिपुण्णविउलखंधे, जुगसण्णिभ-
पीणरइय पीवरपउट्ठे सुसंट्ठिय-सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-घण थिर-
सुबद्धसंधि, पुरवरफलिहवट्टियभूए, भुयइसर विउलभोग-
आदाण फलिह-उच्छूढ-दीहबाहू, रत्ततलोवइय-मउयमसल-
सुजाय-लक्खणपसत्थअच्छिद्दजालपाणि, पीवरकोमलवरं-
गुलि-आयव-तंव-तलिय-सुइरुइलणिद्धणखे चंदपाणिलेहे,
सुरपाणिलेहे, संखपाणिलेहे, चक्कपाणिलेहे, दीसासोत्थिय-
पाणिलेहे, चंदसूर-संख-चक्क-दिसा-सोत्थिय-पाणिलेहे,
कणग-सिलातलुज्जल-पसत्थ-समतल उवचियविच्छिण्ण-
पिहुलवच्छे, सिरवच्छंकियवच्छे, अकरंडुय-कणगरुइय-
णिम्मल-सुजाय-णिरुवहय-देहदारी, अट्ठसहस्सपडिपुण्ण-
वरपुरिसलक्खणधरे सण्णयपासे, संगयपासे, सुंदरपासे,
सुजायपासे, मियमाइयपीण रइयपासे, उज्जुयसमसहिय-
जच्चतणु कसिण णिद्ध-आइज्ज लडहरमणिज्ज रोमराइ, झस-
विहग सुजाय-पीणकुच्छि, झसोयरे, सुइकरणे, पउम-वियड-
णाभि, गंगावत्तग्गपयाहिणावत्त तरंग भंगुर रविकिरण तरुण
बोहियअकोसायतपउमगंभीर-वियडणाभि, साहय सोणद-
मुसल दप्पण णिकरिय, वरकणगच्छरु सरिस वरवइर-वलिय-

मज्झे, पमुइय-वरतुरंग-सिहवरवट्टियकडि, वरतुरंगसुजायसु गुज्झदेसे, आइरणाहउव्व णिरुवलेवे, वरवारण-तुल्ल-विक्क-म्म-विलसियगई, गयससणसुजाय-सण्णिभोरु, समुग्ग-णिम-ग्ग-गूढजाणू, एणिकुरुविंदावत्तवट्टाणुपुव्व-जंघे, संठिय-सुसिलिट्ठविसिट्ठगूढगुप्फे, सुपइट्ठिय-कुम्मचारुचलणे, अणु-पुव्वसुसंहयंगुलिए, उण्णय-तणुतंब-णिद्धणहे, रत्तुप्पलपत्त-पउमसुकुमालकोमलतले, अट्ठसहस्सवरपुरिसलक्खणधरे, णगणगर-मगरसागर-चक्कंक वरंकगमलंकियचलणे, विसिट्ठ-रूवे, हुयवहणिधूम-जलियतडिय-तरुण-रविकिरण-सरिसतेए।

—औपपातिक समवसरणाधिकार

अर्थ—भगवान् का मस्तक-श्रेष्ठ लोह को तपा कर खूब कूट कर घन पिण्ड बनाया हुआ कूट अर्थात् शिखर के समान था, समस्त शुभलक्षणों युक्त था। जिस प्रकार सामली वृक्ष का फल ऊपर से तो कठोर होता है किन्तु उसे फोड़ने पर अन्दर से कोमल निकलता है, इसी प्रकार भगवान् का मस्तक ऊपर से तो खूब कठोर था, किन्तु अन्दर से बड़ा कोमल था। उनके केश बहुत और शुभ लक्षणों से युक्त थे तथा सुगन्ध युक्त, उत्तम भुज-मोचक रत्न, भृङ्ग, नील-गुली, काजल, मिस्सी, मदोन्मत्त भ्रमरों के समूह के समान काले थे। स्निग्ध, निकुरंब वृक्ष के समूह के समान सघन, और दक्षिणावर्त-दाहिनी तरफ मुड़े हुए थे। दाडिम के फूल के समान लाल तपाये हुए सोने के समान मैल रहित निर्मल चिकनी केश उत्पन्न होने की भूमि थी अर्थात् ऐसी मस्तक की चमड़ी थी। इस प्रकार उनका मस्तक उत्तम छत्रके समान था। उनका ललाट

विपमपना रहित चिकना सुन्दर अर्द्धचन्द्राकार आधे चन्द्रमा के समान गोलाकार एव सौम्य था। उनके कान अत्यन्त सुन्दर और प्रमाण युक्त थे। कपोल भाग मांस से अतिपुष्ट था। नमाये हुए धनुष के समान टेढी, मेघों की पक्ति के समान काली, सूक्ष्म और चिकनी भृकुटि थी। खिले हुए कमल के समान प्रफुल्लित आँखें थीं। खिले हुए कमल पर श्वेत पत्र के समान आँख के आँपण थे। मोटी और लम्बी एव सीधा उन्नत नासिका (नाक) थी। प्रवाल और बिम्ब फल के समान लाल एव पुष्ट ओष्ठ (होठ) थे। उनके दात चन्द्रमा शख, गाय के दूध के फेन, मोगरे का फूल, जलप्रवाह और कमलतन्तु के समान सफेद स्वच्छ एव निर्मल थे। अखण्ड, अस्फुटित, अविरल-सघन और चिकने थे तथा एक दात के समान सब दातों का पक्ति थी। अग्नि में तपाये हुए सोने के समान लाल तालुभाग और जिह्वा थी। सुन्दर तथा सदा एक समान रहने वाले उनके मु ह के बाल (केश) थे। माप से उपचित, प्रशस्त एव विस्तार्ण हनु (ठोडी) थी। चार अङ्गुल प्रमाण कबूतर के समान सुन्दर ग्रीवा (गर्दन) थी। उत्तम भैंसा, सुअर, शार्दूल-सिंह, बैल और हाथी के समान पुष्ट स्कन्ध-कन्धे थे। उनकी दोनों बाहु (भुजाएँ) गाड़ी के घूसरे के समान तथा नगर के दरवाजे की अर्गला (आगल) के समान लम्बी सुसस्थित, चिकनी, पुष्ट, सुन्दर और स्थिर थी। उनकी हथेली लाल, मास से पुष्ट, कोमल, प्रशस्त और शुभ लक्षणों से युक्त थी। उनका हाथ छिद्र रहित था अर्थात् अङ्गुलियों के बीच में छिद्र नहीं थे। पुष्ट, कोमल और सुन्दर अङ्गुलियाँ थीं। हाथ की अङ्गुलियों के नख ताँबे के समान लाल वर्ण वाल, सुन्दर और पतले थे। उनकी हथेली में चन्द्ररेखा, सूर्य रेखा, शख रेखा और दक्षिणावर्त स्वस्तिक की रेखा थी, इस प्रकार उनकी हथेली, चन्द्र सूर्य शख और दक्षिणावर्त स्वस्तिक की

रेखाओं से युक्त थी। उनका वक्षस्थल (छाती) सुवर्ण के शिलापट के समान विस्तीर्ण, विषमता रहित समतल, प्रशस्त, पुष्ट एवं मांस से उपचित था। हृदय पर श्रीवत्स-(स्वस्तिक) का चिन्ह था। करंडिये की लकड़ियों के समान दृष्टि में न आने वाली पसलियाँ थी। सुवर्ण के समान निर्मल, स्वच्छ और निरुपद्रव (रोगादि उपद्रव रहित) शरीर था। उत्तम पुरुष के एक हजार आठ लक्षणों से युक्त था। उनके पसवाड़े क्रमशः ढलते (उतरते) हुए, सुसंगत-मिले हुए, मांस से पुष्ट और सुन्दर थे। उनके वक्षस्थल (छाती) पर उज्ज्वल, सम-बराबर, सूक्ष्म पतली, सुन्दर, लावण्ययुक्त रमणीय रोमराजि (केशों की पंक्ति) थी। मछली और पक्षी के समान सुन्दर और पुष्ट कुक्षि थी। मछली के समान उदर (पेट) था। कमल के समान पवित्र और विकसित तथा गङ्गा नदी के समान विस्तीर्ण एवं दक्षिणावर्त गम्भीर तथा तरुण सूर्य की किरणों से खिले हुए कमल के समान विकसित नाभि थी। मूसल का मध्य भाग, दर्पण की मूठ का मध्यभाग, तलवार की मूठ का मध्यभाग, वज्र के मध्य-भाग के समान तथा उत्तम जाति के घोड़े और सिंह के कटि-भाग के समान उनका कटिभाग (कमर) था। उत्तम जाति के घोड़े के समान उनका गुह्य प्रदेश (पुरुषचिन्ह) गुप्त था। जिस प्रकार आकीर्ण जाति के उत्तम घोड़े का गुदा भाग लीद से लिप्त नहीं होता है उसी प्रकार उनका भी गुदा भाग निरुपलेप था अर्थात् विष्टा आदि से लिप्त नहीं होता था। पराक्रम शाली प्रधान हाथी के समान उनकी सुन्दर गति (गमन-चाल) थी। उत्तम हाथी की सूँड के समान पुष्ट एवं क्रमशः उतरती (ढलती) हुई उनकी जंघाएँ थीं। डिब्बे के समान बन्द एवं गुप्त ढकनी युक्त घुटने थे। हिरन और कुरुविंद नामक पक्षी के समान गोल और क्रमशः उतरती हुई (ढलती हुई) पिण्डलियाँ थी। सुश्लिष्ट एवं सुसंस्थित और गुप्त

टकने (गिरिया) थे। पुष्ट कछुए के समान सुन्दर पैर थे। अनुक्रम से सुसंस्थित परस्पर मिली हुई पैर की अङ्गुलियाँ थीं। ताम्बे के समान लाल, उन्नत, चिकने और सुन्दर नख (पैरों की अङ्गुलियों के नख) थे। रक्तोत्पल (लाल कमल) के समान लाल और कमल के समान कोमल पैर के तलुए थे। वे पर्वत, मगरमच्छ समुद्र और चक्र आदि चिन्हों से चिन्हित थे। इस प्रकार उत्तम पुरुष के एक हजार आठ लक्षणों से युक्त थे। इस तरह शिखा से लेकर पैरों की अङ्गुलियों के नखों तक भगवान् के शरीर का रूप विशिष्ट और प्रज्वलित निर्धूम अग्नि के समान, बिजली के समान और तरुण सूर्य के समान तेजस्वी था।

९—शिविकाएँ
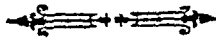
वर्तमान चौवीसी के चौबीस तीर्थङ्करों की शिविकाओं के नाम इस प्रकार हैं:—

एएसिं चउव्वीसाए तित्थयराणं चउव्वीसं सीयाओ होत्था तंजहा—

सीया सुदंसणा सुप्पभा य सिद्धत्थ सुप्पसिद्धा य ।
विजया य वेजयंती, जयंती अपराजिया चेव ॥१॥
अरुणप्पभ चंदप्पभ सूरप्पभ अग्गि सप्पभा चेव ।
विमला य पंचवण्णा, सागरदत्ता य णागदत्ता य ॥२॥
अभयकर णिव्वुइकरा मणोरमा तह मणोहरा चेव ।
देवकुरू उत्तरकुरा, विसाल चंदप्पभा सीया ॥३॥
एयाओ सीयाओ, सव्वेसिं चेव जिणवरिंदाणं ।
सव्वजगवच्छलाणं सव्वोउगसुभाए छायाए ॥४॥
पुव्विं ओक्खित्ता माणुस्सेहिं साहट्टु रोमकूवेहिं ।
पच्छा वहंति सीयं, असुरिंदसुरिंदणागिंदा ॥५॥
चलचवलकुंडलधरा, सच्छंद विउव्वियाभरणधारी ।
सुरअसुरवंदियाणं, वहंति सीयं जिणंदाणं ॥६॥

पुरओ वहंति देवा, णागा पुण दाहिणम्मि पासम्मि ।
पच्चत्थिमेण असुरा, गरुला पुण उत्तरे पासे ॥७॥
—समवायाग सूत्र समवाय १५७

अर्थ—इन चौबीस तीर्थङ्करों की चौबीस शिविकाएँ-पालखियाँ थीं। उनके नाम इस प्रकार थे-१ सुदर्शना। २ सुप्रभा। ३ सिद्धार्था। ४ सुप्रतिष्ठा। ५ विजया। ६ वैजयती। ७ जयती। ८ अपराजिता। ९ अरुणप्रभा। १० चन्द्रप्रभा ११ सूर्यप्रभा। १२ अग्निप्रभा। १३ विमला। १४ पचवर्णा। १५ सागरदत्ता। १६ नागदत्ता। १७ अभयंकरा। १८ निर्वृतिकरा। १९ मनोरमा। २० मनोहरा। २१ देवकुरा। २२ उत्तरकुरा। २३ विशाला २४ चन्द्रप्रभा।

सम्पूर्ण जगत के हितकारी सब तीर्थङ्करों की ये सब ऋतुओं में सुख देने वाली, छाया युक्त यानी आतापना रहित पालखिया थीं।

जिनके रोम रोम हर्षित हो रहे हैं, ऐसे मनुष्य इन पालखियों को पहले उठाते हैं और पीछे असुरेन्द्र सुरेन्द्र और नागेन्द्र उठाते हैं।

चञ्चल और चपल कुण्डलों को धारण करने वाले और स्वेच्छापूर्वक वैक्रिय किये हुए आभूषणों को धारण करने वाले सुरेन्द्र और असुरेन्द्र सुर और असुर द्वारा वन्दित जिनेश्वरों की पालखियों को उठाते हैं।

देव आगे चलते हैं। नागकुमार देव दाहिनी तरफ चलते हैं। असुरकुमार जाति के देव पीछे की तरफ चलते हैं और सुवर्ण कुमारादि देव उत्तर की तरफ यानी बाईं तरफ चलते हैं।
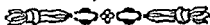
१०—आदिनाथ की दीक्षा

तए णं उसभे अरहा कोसलिए णयणमालासहस्सेहिं पिच्छिज्जमाणे पिच्छिज्जमाणे एवं जाव णिगच्छइ जहा उववाइए जाव आउलबोलबहुलं णभं करंते विणीयाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिगच्छइ आसियसंमज्जिय सित्तसुइगपुप्फोवयारकलियं सिद्धत्थवणविउलरायमग्गं करेमाणे हयगयरहपहकरेण पाइक्कचडकरेण य मंदं मंदं उद्धत-रेणुयं करेमाणे करेमाणे जेणेव सिद्धत्थवणे उज्जाणे जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवर-पायवस्स अहे सीअं ठावेइ, ठावइत्ता सीआओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता सयमेवाभरणमल्लालंकारं ओमुअइ ओमुअइत्ता सयमेव * चउहिं मुट्ठीहिं लोअं करेइ लोअं करित्ता छट्ठेणं भत्तेणं अपाणएणं आसाढाहिं णक्खत्तेणं जोगमुवागएणं उग्गाणं भोगाणं राइण्णाणं खत्तियाणं चउहिं सहस्सेहिं सद्धिं एगदेवदूसमादाय मुंडे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए ॥

—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति दूसरा वक्षस्कार

---

* टिप्पणी—तीर्थङ्कर भगवान् पंचमुष्टि लोच करते हैं किन्तु भगवान् ऋषभदेव का चतुर्मुष्टि (चार मुष्टि) लोच कहा गया है।

अर्थ—तब हजारों लोगो के द्वारा देखे जाते हुए भगवान् ऋषभदेव राज महल से निकले। उववाई (औपपातिक) सूत्र में राजा कोणिक के निकलने का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है वैसा ही यहाँ भी समझ लेना चाहिए। यावत् जनकोलाहल से आकाश को गुंजाते हुए विनीता राजधानी के बीचोबीच होते हुए निकले और सिद्धार्थ वन की ओर जाने लगे। सिद्धार्थवन उद्यान के रास्ते को गन्धोदक छिड़क कर सुगन्धित बनाया था। कचरा निकाल कर साफ और पवित्र किया था और पुष्प डाल कर विशेष सुगन्धित और सुशोभित किया था। ऐसे राजमार्ग से चलते हुए सिद्धार्थवन उद्यान में श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे आये। वहाँ अशोक वृक्ष के नीचे आकर शिबिका (पालखी) को नीचे रख दिया। फिर भगवान् ऋषभ देव पालखी से नीचे उतरे। नीचे उतर कर स्वयमेव अपने हाथ से वस्त्र आभूषण आदि सब उतार दिये। फिर चार मुष्टि से अपने केशों का लोच किया। लोच करके

इसका खुलासा टीकाकार ने इस प्रकार किया है कि—भगवान् ऋषभदेव ने एक मुष्टि से दाढ़ी मूछ के केशों का लोच किया था फिर शिर के केशों का तीन मुष्टि लोच किया, चौथी मुष्टि के केश बाकी रहे। वे भगवान् के कन्धों पर लटकते हुए और वायु के द्वारा हिलते हुए अत्यन्त शोभित हो रहे थे। यह देख कर शक्रेन्द्र ने भगवान् से प्रार्थना की कि हे भगवन्! ये केश बड़े ही सुन्दर लग रहे हैं। इसलिये इन्हें रहने दीजिये। शक्रेन्द्र की प्रार्थना को स्वीकार कर भगवान् ने उन केशों को रहने दिया इस लिए भगवान् ऋषभदेव का लोच चतुर्मुष्टि लोच ही हुआ।

किंवदन्ती है कि भगवान् के शिर पर जो केश रहे थे वे ठीक बीच में थे। इसलिए वे चोटी कहलाये। उसकी स्मृतिरूप हिंदु लोग अपने शिर पर चोटी रखते हैं।

चौविहार वेला के तप से उत्तरोषाढा नक्षत्र का चन्द्रमा के साथ योग मिलने पर उग्रकुल भोगकुल राजन्यकुल के चार हजार पुरुषों के साथ एक देवदूष्य वस्त्र सहित गृहस्थवास छोड़ कर अनगार धर्म स्वीकार किया अर्थात् दीक्षा अङ्गीकार की।

(दीक्षा की तैयारी)

भगवान् ऋषभदेव की दीक्षा की तैयारी का वर्णन करते हुए विस्तार से कहा है:—

तए णं उसभे अरहा कोसलिए वीसं पुव्वसयसहस्साइं कुमारवासमज्झे वसइ, वसिता तेवट्ठिपुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसइ, तेवट्ठिपुव्वसयसहस्साइं महाराय-वासमज्झे वसमाणे लेहाइआओ गणियप्पहाणाओ सउण-रुअपज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ, चोसट्ठिं महिलागुणे, सिप्पसयं च कम्माणं तिण्णि वि पयाहिआए उवदिसइ, उवदिसित्ता पुत्तसयं रज्जसए अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता * तेसीइं पुव्वसयसहस्साइं महारायवासमज्झे वसइ, वसित्ता

* टिप्पणी—यहाँ मूल पाठ में पहले यह कहा गया है कि "भगवान् ऋषभदेव बीस लाख पूर्व तक कुमारवास (राज्याभिषेक किये बिना) में रहे और त्रेसठ लाख पूर्व महाराज पद में रहे" इसके आगे के पाठ में जब दोनों की सम्मिलित संख्या बतलाई है तब यह कहा गया है कि—'भगवान् ऋषभदेव तयासी लाख पूर्व तक महाराज पद में रहे।'

जे से गिम्हाण पढमे मासे पढमे पक्खे चित्तबहुले तस्स णं चित्तबहुलस्स णवमी पक्खेणं दिवसस्स पच्छिमे भागे चइत्ता हिरण्णं चइत्ता सुवण्णं चइत्ता कोसं चइत्ता कोट्ठागारं चइत्ता बलं चइत्ता वाहणं चइत्ता पुरं चइत्ता अंतेउरं चइत्ता विउलधण कणग रयण-मणिमोत्तिअ संख सिलप्पवालरत्तरयणसंतसारसावइज्जं विच्छड्डइत्ता विगोवइत्ता दाणं दाइआणं परिभाइत्ता सुदंसणाए सीआए सदेवमणुआसुराए परिसाए समणुगम्ममाणमग्गे संखिअचक्किअ-णंगलिय-मुहमंगलिअ-पूसमाणव-वद्धमाणग-आइक्खग लंख मंख घंटिअ-गणेहिं ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगलाहिं सस्सिरीआहिं हिययगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं कण्णमणणिव्वुइकराहिं अपुणरुत्ताहिं

इन दोनों पाठों को देखने से यह शंका हो सकती है कि ये दो पाठ विरोधी कैसे आये ? किन्तु ऐसी शंका नहीं करनी चाहिये; क्योंकि वृत्तिकार ने इसका समाधान दिया है कि 'भाविनी भूतवदुपचार' अर्थात् 'भावी में भूत का उपचार किया जा सकता है' इस नियम के अनुसार भगवान् ऋषभदेव महाराजा होने वाले थे इसलिए उनकी कुमारावस्था भी महाराजावस्थामें गिन ली गई है। इस अपेक्षा से 'तेयासी लाख पूर्व वर्ष' महाराजावस्था कही गई है।

अतः मूल पाठ में पूर्वापर किसी प्रकार का विरोध नहीं है। दोनों पाठ सुसंगत है।

अट्ठसइआहिं वग्गूहिं अणवरयं अभिणंदंता य अभिथुणंता य एवं वयासी-जयजय णंदा! जयजय भद्दा! धम्मेणं अभीए परीसहोवसग्गेणं खंतिखमे भयभेरवाणं धम्मे ते अविग्घं भवउ तिकट्टु अभिणंदंति अ अभिथुणंति अ।

—जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति

कौशलिक भगवान् ऋषभदेव बीस लाख पूर्व वर्ष तक कुमार अवस्था में रहे, त्रेसठ लाख पूर्व वर्ष तक महाराज पद में रहते हुए प्रजा के हित के लिए गणित कला यावत् पक्षियों की बोली जानने की कला पर्यन्त पुरुष की बहत्तर कला, स्त्री की ६४ कला और एक सौ शिल्प कर्म, ये तीनों अच्छी तरह से बतलाये-सिखलाये। फिर भरत आदि सौ पुत्रों को सौ राज्यासनों पर स्थापित किया। इस तरह तयासी लाख पूर्व वर्ष तक महाराज पद में रह कर उष्णकाल के प्रथम मास में प्रथम पक्ष में चैत्र कृष्णा नवमी के दिन के पिछले पहर में सोना, चांदी, धान्य के कोठार, चतुरङ्गिणी सेना, वाहन, अन्तःपुर, विपुल धन कनक, रजत, मणि मोती, शंख, शिला, प्रवाल, रत्न आदि सब पदार्थों का त्याग कर, तथा जिसको दान देना, उसे दान देकर, जिसके विभाग करना था उसका विभाग करके सुदर्शना नामक शिविका में बैठ कर मनुष्य असुर और सुर के समूह से घिरे हुए भगवान् ऋषभदेव घर से निकले। उस समय उनके आगे शंख बजाने वाले, लाङ्गलिक अर्थात सुवर्णमय हल धारण करने वाले भाट विशेष, मंगल शब्द उच्चारण करने वाले, पुष्यमाण अर्थात मागधिक, वर्द्धमानक अर्थात अपने कन्धों पर आदमी चढाने वाले, आख्यायक अर्थात् शुभाशुभ फल बतलाने वाले, लंख अर्थात् बांस के अग्रभाग पर

खेलने वाले, मत्त अर्थात् हाथ में चित्र पट लिये हुए आगे आगे चल रहे थे। इष्टकारी, कान्तकारी, प्रिय, मनोज्ञ, सुन्दर, उदार, कल्याणकारी शान्तिकारी, निरुपद्रवकारी, समृद्धिकारी, मङ्गलकारी, सश्रीक, शोभायुक्त, हृदय को सुखकारी, हृदय को आल्हादित करने वाले, कानों को और मन को शान्ति पहुचाने वाले, अनेक शुभ सूचक शब्द बोलते हुए वे कहने लगे कि हे भगवन्! आप जयवन्त होवें, विजयवन्त होवें, आप समृद्ध होवें आपके लिए कल्याण हो। आप धर्म में निर्भीक बनें, परीषह उपसर्गों के निर्भीक विजेता बनें, क्षमाशील बनें, भय भैरव शब्दों को निडरतापूर्वक सहन करने वाले बनें, धर्म में आपको किसी तरह का विघ्न न हो। इस प्रकार वे भगवान् का अभिनन्दन करते हुए स्तुति करने लगे।